"हमारा यह मानना कि भारतीय ग्राम तक विकास-की-झिरी शहरों से, या दुनिया के विकसित मुल्कों से उन तक पहुँचेगी ग़लत है। ऐसा करने से हमारी बुनियाद कमज़ोर होगी। असल में हमें विकास-के-स्रोत की खोज भारतीय ग्राम में ही करनी होगी। सब जानते हैं कि जब तक समाज में समानता और अमन आविर्भूत नहीं होंगे तथा आतंक और हिंसा बने रहेंगे, तब तक विकास के रुद्ध स्रोत उन्मुक्त नहीं हो पायेंगे। हम दो क़दम आगे बढ़ेंगे, और चार क़दम पीछे लौटेंगे। यह गणित अवनति और विनाश का गणित है, इसे हम उत्थान और विकास का गणित नहीं कह सकते।

"आज का उद्योगवर्ती अर्थतन्त्र प्रकृति को कमाई का जरिया मान कर चलता है, उसके लिए पेड़-पौधे, नदी-नाले, पर्वत-प्रपात, पशु-पक्षी, वराह-हाथी, मछली-मुर्गी, केंचुए-खरगोश तमाम कमाई के साधन हैं; इसीलिए वह इन सबका क्रूरतम दोहन करता है, और उनके प्रति जो भी असम्मानजनक संभव है, उसे करने से नहीं चूकता। यही कारण है कि आज के अर्थतन्त्र ने जीवन-के-प्रति-सम्मान की भावना को चोपट कर दिया है, और वह सिर्फ पूँजी पर केन्द्रित हो गया है। अहिंसा का अर्थशास्त्र हिंसा को घटाने का अर्थशास्त्र है। उसकी आकांक्षा दुनिया के कोने-कोने में समता और शान्ति, सुख और समृद्धि की उर्वर संभावनाओं को हरा-भरा करना है; अतः जब तक हम दुनिया के हरेक गांव को स्व-क्षम जगत्वर्ती ग्राम (सस्टेनेबल ग्लोबल विलेज) नहीं बनाते, तब तक विश्व-शान्ति की संभावना सिर्फ स्वप्न बनी रहेगी।

--संपादकीय अंश

तीर्थंकर

वर्ष २४ अंक ६-७ अक्टू. नव. १९९४ कार्तिक-मार्गशीर्ष २०५१ वी.नि.सं. २५२१

एलर्जी का उपचार : अप्रमत्त जैनाचार एवं संतुलित शाकाहार

–डॉ. एस.एम. जैन

आज के इस वैज्ञानिक युग में लोगों आचार-विचार उनकी ज़रूरतों, परिस्थितियों, एवं उपलब्धियों के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं।

पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित हो कर मनुष्य ने कुछ लाभदायक बातें सीखी हैं, जैसे–अपने लक्ष्य को सामने रखते हुए शिक्षा पर विशेष ध्यान; साफ-स्वच्छ रहन-सहन।

दूसरी और अपनी मूल संस्कृति को ताक में रख कर बहुत कुछ बुराइयाँ भी ग्रहण कर ली हैं, जैसे– मांस-भक्षण, मदिरा-पान; भष्ट्राचार, व्यभिचार एवं मायाचार आदि; बाहरी शारीरिक एवं भौतिक दिखावा एवं लगातार मानसिक तनाव।

फिर भी आज के युवावर्ग की यह विशेषता है कि यदि उसे किसी नियम या प्रतिबन्ध को वैज्ञानिक तर्क की कसौटी पर कस कर प्यार से समझाया और महसूस कराया जाए तो वह उसे मान लेता है। इससे एक सुनहरे स्वस्थ युग का सूत्रपात किया जा सकता है।

इसके लिए ज़रूरी है कि सभी बुद्धिजीवियों वैज्ञानिकों, डॉक्टरों एवं संतों को अपनी प्रयोग-शालाओं, अस्पतालों एवं मन्दिरों से बाहर निकल कर आम नागरिक के बीच बैठ कर उन्हें तर्कसंगत तरीक़े से अपनी बात समझानी होगी।

इस लेख के माध्यम से मैं विभिन्न प्रकार की एलर्जी (बाह्य पदार्थों के लिए अतिसंवेदनशीलता) का शाकाहार एवं जैनाचार से वैज्ञानिक संबन्ध स्थापित करना चाहूँगा। इसके लिए ज़रूरी है कि हम एलर्जी के बारे में कुछ मोटी-मोटी खास जानकारियों से अवगत हो जाएँ।

'एलर्जी' से तात्पर्य है शरीर द्वारा किसी विशेष बाहरी या आन्तरिक एलर्जन को ग्रहण न करते हुए उसके विरोध में एन्टीबॉडीज़ (प्रतिकाय) का निर्माण करना फिर इन्हीं एन्टीबॉडीज़ (प्रतिरोधक तत्त्वों) का इन विशेष एलर्जन से घमासान युद्ध जिसके फलस्वरूप एलर्जी के लक्षण प्रकट होते हैं।

एलर्जी निम्न प्रकार की होती है–

१. एग्ज़िमा २. शीत पित्त (आर्टिकैरिया) ३. दमा या श्वास (एलर्जिक अस्थमा) ४. लगातार सर्दी जुकाम (अलर्जिक राइनाइटिस)।

एग्ज़िमा (कांटेक्ट डर्मीटाइटिस)

इस वर्ग की एलर्जी से शायद आप अच्छी तरह वाकिफ़ होंगे, जिसमें खुजली के लाल धब्बे त्वचा के किसी भी हिस्से पर हो जाते हैं और ज्यादा समय तक रहने से त्वचा मोटी एवं काली पड़ जाती है।

अक्सर एग्ज़िमा के मुख्य कारणों में वे ही विशेष पदार्थ हैं तो त्वचा के सीधे संपर्क में आते है; जैसे–

–रेशमी एवं नायलोन के कपड़े।

–रंगीन एवं सस्ते चमड़े एवं प्लास्टिक के जूते, चप्पल।

–कृत्रिम (आर्टीफीशियल) लुभावने आभूषण।

–विभिन्न सौन्दर्य-प्रसाधन।

–प्याज, लहसुन, अदरक, आलू एवं बैंगन काटना।

शायद आप जानते हैं कि उपर्युक्त पदार्थ एक सदाचारी (सादगी से जीवन-यापन करने वाले) व्यक्ति के लिए निषिद्ध हैं, इसलिए इनसे बचते हुए संभावित एलर्जी से बचा जा सकता है।

हालाँकि इसके अलावा कुछ ऐसे भी पदार्थ हैं, जो जैनाचार में निषिद्ध न होते हुए भी एग्ज़िमा के कारण हो सकते हैं; यथा–

–सामान्य फल एवं सब्जियों का काटना।

–फूलों के पराग-कण एवं फसल के पौधे।

–दाद एवं फोड़े-फुन्सियों के उपचार-हेतु लगाये जाने वाले मरहम आदि।

(शेष पृष्ठ ३१ पर)

तीर्थंकर

विचार मासिक

सद्विचार की वर्णमाला में
सदाचार का प्रवर्तन

वर्ष २४; अंक ६-७
अक्टूबर-नवम्बर १९९४
कार्तिक-मार्गशीर्ष २०५१
वी.नि.सं. २५२१

संपादक: डॉ. नेमीचन्द
प्रबंध संपादक: प्रेमचन्द जैन

हीरा भैया प्रकाशन

६५, पत्रकार कॉलोनी, कनाड़िया मार्ग,
इन्दौर-४५२ ००१, मध्यप्रदेश

दूरभाष: ४९० ८०४

वार्षिक शुल्क: पचास रुपये
द्विवार्षिक शुल्क: पिच्यानवे रुपये
आजीवन शुल्क: चार सौ रुपये
प्रस्तुत अंक: चार रुपये

६५, नईदुनिया प्रिंटरी, इन्दौर-९ द्वारा हीरा भैया प्रकाशन इन्दौर-४५२ ००१ के लिए मुद्रित।

समाधान-७

गति

'गति' शब्द का इस्तेमाल तो हम प्रायः करते हैं, और इसे सड़कों पर जगह-जगह अंकित भी देखते हैं; किन्तु इसकी गहराइयों में उतर कर इससे परिचित होने का मन शायद कभी नहीं बना पाते। कई वाहनों की पीठ पर 'गति-मर्यादा' भी अंकित होती है। राजमार्गों पर दुर्घटनाओं से रक्षा के लिए गति-अवरोधक (स्पीड-ब्रेकर्स) भी बनाये जाते हैं। इतना सब होते हुए भी हम 'गति' के उन तमाम मायनों से अपरिचित बने रहते हैं, जो इससे लगातार जुड़ते रहे हैं।

जब कोई व्यक्ति किसी विशिष्ट क्षेत्र में हस्तक्षेप करता है, तब पास-पड़ोस खड़े लोग उसे आगाह करते हैं कि जब आपकी इस क्षेत्र में कोई गति नहीं है, तब फिर फिजूल अपनी टाँग क्यों अड़ा रहे हैं? यहाँ गति का अर्थ किसी विषय या ज्ञान-क्षेत्र के बारे में जानकारी का अभाव है।

'गति' संस्कृत की 'गम्' धातु से विकसित शब्द है। 'गम्' धातु बड़ी भाग्यशालिनी धातु है। इससे विकसित ज्यादातर शब्द ज्ञानार्थक हैं। आगम, निगम, अधिगम इत्यादि ज्ञानवाची शब्द हैं। धर्म और दर्शन के क्षेत्रों में इन शब्दों का प्रचुर उपयोग हुआ है। इससे एक बात सिद्ध होती है कि ज्ञान कोई रुकी हुई चीज नहीं है, वह प्रतिपल गतिवान् अस्तित्व है। इसी गतिशीलता के कारण ज्ञान को अनन्त और जीवन्त कहा गया है। मनुष्य का अन्त आ सकता है; किन्तु ज्ञान का अन्त कभी नहीं आता। उसके द्वार, प्रतिपल खुले रहते हैं।

जो लोग ज्ञान का दंभ भरते हैं, असल में वे ज्ञानी होते ही नहीं हैं – अज्ञानी और मूढ़ होते हैं। ज्ञान कभी अहंकार पैदा नहीं करता; वह विनय का जनक है। देखा गया है कि ज्ञान जितना-जितना/ज्यों-ज्यों बढ़ता है, आदमी उतना-उतना/त्यों-त्यों अधिक विनम्र और

गंभीर होता जाता है। ज्ञान की यह खूबी है कि वह व्यक्ति को कभी मर्यादा से स्खलित नहीं होने देता। यह तथ्य भी विलक्षण है कि जहाँ ज्ञान होता है, वहाँ संयम और विवेक अवश्य होते हैं। जिसे ज्ञान हो और वह असंयत हो यह कभी संभव ही नहीं है।

अधकचरा ज्ञान जीवन को कचरा कर देता है। कहा भी है 'नीम हकीम खतरए जान'; इसलिए ज्ञान को उत्तरोत्तर पकने देना चाहिये। ध्यान रहे: परिपक्व ज्ञान ही रसान्वित हो सकता है – अपरिपक्व ज्ञान में न तो कोई गहराई ही होती है, और न ही कोई माधुर्य, और न ही ऐसा कुछ जो जीवन में कोई नयी खिड़की या रोशनदान खोलता हो।

'गति' रफ्तार को भी कहा गया है। अंग्रेजी में गति के लिए 'स्पीड' शब्द प्रयुक्त है। 'स्पीड' शब्द आरम्भ में सफलता, सद्भाग्य और समृद्धि का सूचक शब्द था; इसीलिए 'गॉडस्पीड' शब्द प्रचलन में बना रहा। बाद को चल कर स्पीड गति या रफ्तार का पर्याय बन गया।

इस तरह जब हम अंग्रेजी में हो कर इस शब्द की मुखछवि के दर्शन करते हैं, तब इसमें हमें सौभाग्य और समृद्धि भी नज़र आते हैं। ठीक भी है – गति और सौभाग्य संयम की ज़मीन पर अक्सर मंगलदायी होते हैं। **सधी-सँभली गति में न तो कभी विघ्न आता है और न ऐसी कोई आशंका ही रहती है।** देखा यह गया है कि जहाँ कोई रोध/अवरोध होता है, वहाँ सड़ाँध उत्पन्न हो जाती है। नदी के जल में सड़ाँध अथवा विकार की कोई गुंजाइश नहीं है। किसी गड्ढे या तालाब के रुके जल में ही विकृति की आशंका संभव है। इस तरह गति के पेट में आठों याम ताज़गी भी मौजूद मानिये। जो गतिमान है, वस्तुतः वह सस्फूर्त और टटका होगा ही।

वस्तुतः गति एक बड़ा दिलचस्प लफ्ज़ है, जिसे हम जितना-जितना खोदते हैं, उसमें-से उतना-उतना अर्थ-जल हमें मिलता है।

–नेमीचन्द

क्या/कहाँ

एलर्जी का उपचार: अप्रमत्त जैनाचार एवं संतुलित शाकाहार
–डॉ. एस.एम. जैन २
समाधान-७: गति
–डॉ. नेमीचन्द जैन ५
अहिंसा का अर्थशास्त्र ५
–संपादकीय ५
कविताएँ ८
मुनि क्षमासागर
कन्हैयालाल सेठिया
गणेश ललवानी
तमिलनाडु के जैन मन्दिर
–दुलीचन्द जैन ९
मुखातिब: खुद-ब-खुद
–नेमीचन्द/निमीचन्द जैन १५
वारसाणुवेक्खा और इन्द्रधनुष
–आचार्य विद्यानन्द मुनि १७
सम्मान करें जीवन का
–मुनि चन्द्रप्रभ सागर १९
कसौटी (पुस्तक-समीक्षा) २५
समाचार-परिशिष्ट २७
जैनधर्म: १०० तथ्य
–डॉ. नेमीचन्द जैन ३२

आज आवश्यकता आवश्यकताओं को गुणित करने की नहीं है, वरन् उन्हें घटाने की है। संस्कृति और सभ्यता के जिस दौर से हम आज गुज़र रहे हैं, उसमें 'गुणा' की प्रतिष्ठा है, 'भाग' वहाँ अपकीर्तित है; वहाँ 'जोड़' स्मृत और 'बाकी' 'विस्मृत' है; परिग्रह है, त्याग की कोई साख नहीं है। अध्यात्म 'भाग' और 'बाकी' सिखाता है; भौतिकता और विज्ञान 'गुणा' और 'जोड़'। दोनों के गणित दो अलग ध्रुवों पर स्थित हैं; इसीलिए आशा की कोई किरण यदि कहीं है तो अध्यात्म और धर्म के पास है।

–'तीर्थंकर'; संपादकीय; अक्टूबर १९७७

अहिंसा का अर्थशास्त्र (५)

अहिंसा का अर्थशास्त्र तीन प्रमुख प्रवृत्तियों पर अवस्थित है- ये हैं स्वावलम्बन, अपरिग्रह, विकेन्द्रीकरण। उसका मानना है कि जहाँ पराधीनता, परिग्रहण और केन्द्रीकरण है; वहाँ दमन, दोहन, और हिंसा अपरिहार्यतः हैं। इस संदर्भ में गुजराती भाषा में एक पुस्तक प्रकाशित हुई है- 'सुंदर दुनिया माटे सुंदर संघर्ष' (१९९३; श्रीमती नंदिनी जोशी)। इस किताब के अध्याय ३४ और ३५ अहिंसा के अर्थतन्त्र को बड़ी स्पष्टता से प्रतिपादित/ परिभाषित करते हैं। इन अध्यायों में प्रो. काओरू यामागुची(जापान)के ग्राम-अर्थतन्त्र (म्युराटोपिअन अर्थतन्त्र) की चर्चा की गयी है और कहा गया है कि यही एक ऐसा अर्थतन्त्र है जो हमारी आगामी समाज-रचना का सबल आधार बन सकता है। हो सकता है कुछ लोगों को यह रूढ़ और परम्परित दीख पड़े; किन्तु अब जब तक मनुष्य इस ओर वापस नहीं होगा, उसके बीच के फासले बढ़ेंगे और परिग्रह तथा पूँजी का अजगर उसे आमूलचूल निगल जाएगा। जो भारत हिंसा और परिग्रह के ज़हर से अब तक बचा हुआ था, आज वही उदारीकरण की फाँसी के फँदे में लटका जीवन-मरण का संघर्ष कर रहा है। दुर्भाग्य से बहुराष्ट्रीय कंपनियों के नाम पर देश का जो भी बचाखुचा ग्रामतन्त्र था वह भी सर्वनाश की ओर कूच कर गया है।

ऐसे भयावह क्षणों में यदि हमने हक़ और हकीक़त की ओर से अपनी आँखें मूँदीं तो वह आदमी जो पूँजी का मालिक था, उसका एक संपूर्ण गुलाम बन जाएगा (बन चुका है)। आज जगत्वर्ती ग्राम (ग्लोबल विलेज) की बात तो की जाती है; किन्तु इस बात के पीछे कपट का एक भ्रम-जाल बिछा हुआ है। यहाँ 'ग्लोबल विलेज' का मतलब पूरी दुनिया को एक ग्राम (विलेज) के रूप में विकसित करने का है यानी सूचना-युग (इन्फर्मेशन एज) की तीव्रता का अड्डा बनाना है अर्थात् यह कहना है कि दुनिया इतनी सूचना-पराधीन हो पड़ेगा कि जैसे कोई बात गाँव में जंगल की आग की तरह फैलती-व्यापती है, वैसे दुनिया में वह व्याप जाएगी। गाँव सूचनाओं में कराहने लगेगा। वह दलाल स्ट्रीट बन जाएगा। यह कल्पना या ख्वाब नहीं बल्कि एक भयानक दुःस्वप्न है, जो मनुष्य के अस्तित्व और उनकी अस्मिता के लिए प्रलयंकारी सिद्ध होगा। इससे दुनिया छोटी नहीं होगी और न ही लोग एक पड़ोसी की तरह एक-दूसरे से प्यार, और एक-दूसरे पर भरोसा करने लगेंगे; बल्कि 'पास' कहला कर भी वे एक-दूसरे से कोसों 'दूर' पड़ जाएँगे।

मानिये; हिंसा, सत्ता और पूँजी पर खड़ा यह अर्थतन्त्र मनुष्य और मनुष्य, तथा मनुष्य एवं प्रकृति के बीच ऐसे फासले खड़े कर रहा है, जिन्हें कभी भी पाटना संभव नहीं होगा। आज मनुष्य ने प्रकृति को पूँजी कमाने का साधन/माध्यम बना लिया है, अतः वह उसके अधिकतम शोषण में लग गया है। अधिकतम के मकड़जाल में फँसा आदमी अब सब ओर से विनाश के खौफ़नाक शिकंजे का दबाव/ कसाव महसूस करने लगा है। उसके हाथ-पाँव एक ऐसे आर्थिक जाल में फँस गये हैं, जिससे उभरना असंभव-जैसा हो गया है।

ऐसे में 'ग्लोबल विलेज' का मतलब यदि हम वही लेते हैं जो ऊपर दिया गया है तो मनुष्य को एक अभिशप्त भविष्य की ओर ले जाते हैं और यदि उसका अर्थ हम यह करते हैं कि जो कुछ जगत् में है वह हर गाँव में हो तो हम जगत् को एक ऐसे नन्दन वन के रूप में परिकल्पित करते हैं, जिसका शिल्पन गाँधी ने कभी किया था और जो कभी भारतीय अर्थतन्त्र की रीढ़ था। अहिंसा के अर्थतन्त्र का प्रथम और सर्वोपरि लक्ष्य है एक अहिंसक अपरिग्रहमूलक ग्राम इकाई को आविष्कृत/आविर्भूत करना।

हमें यह भी ध्यान में रखना होगा कि भारत सिर्फ अर्थतन्त्र ही नहीं है; बल्कि वह संस्कृति, सद्विवेक, अध्यात्म एवं धर्म का समवेत सुविकसित तीर्थधाम भी है। भारत एक ऐसा विश्व-स्थल है, जिसने अतीत में कई आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, नैतिक, आध्यात्मिक एवं धार्मिक सफल प्रयोग किये हैं, और विश्व-मानव को एक स्वस्थ छवि प्रदान की है। उसके अर्थतन्त्र की सबसे प्राणवान्, बलशाली एवं ऊर्जावान् इकाई थी ग्राम, वह ग्राम जिसे आज अनजाने में पश्चिम के निरर्थक आवेश में तहस-नहस किया जा रहा है। आज हम एक ऐसे खतरनाक क्षण से गुज़र रहे हैं, जहाँ अर्थ और राजनीति के दबाव से हमारे ग्रामतन्त्र का चेहरा निस्तेज, और फीकाफस्स हुआ जा रहा है – हम बदलें, किन्तु इस बात का ध्यान रखते हुए कि हमारी मौलिकताएँ बरक़रार रहें और हमारा ग्राम परतन्त्र/परमुखापेक्षी न बने। यह सब-सारा तभी संभव है, जब राजनीति, समाज-व्यवस्था, न्याय-प्रबन्ध, शिक्षा एवं चिकित्सा आदि में सुचिन्तित परिवर्तन लाया जाए, और समाविष्ट विकृतियों को दूर किया जाए।

श्रीमती नंदिनी जोशी लिखती हैं कि 'आज से लगभग दो सदी पूर्व हमारे देश के ग्राम इतने सक्षम/स्वावलम्बी/समृद्ध थे कि प्रत्येक ग्राम स्वयं पूरे जगत् का प्रतिरूप था। मैंने अपने पिताजी से सुना था कि संयुक्त राष्ट्र संघ में जिन प्रश्नों की चर्चा होती है, उन तमाम प्रश्नों पर हमारे एक छोटे गाँव के चबूतरे पर भी चर्चा होती है। मात्र इन प्रश्नों का फलक छोटा है अन्यथा उनका स्वरूप तो एक-जैसा ही है।' इसका मतलब है कि अहिंसा का अर्थतन्त्र प्रत्येक भारतीय ग्राम को एक ऐसे 'स्व-क्षम जगत्वर्ती ग्राम' के रूप में विकसित देखना चाहता है, जो लघु संयुक्त राष्ट्र संघ (मिनी यूनो) हो। ऐसे ग्राम पूँजी को ऋण करके ही उभर सकते हैं। जब तक हम विनिमय-पद्धति (बार्टर-सिस्टम) को नहीं लौटायेंगे, जीवन की गुणवत्ता (क्वालिटी) को लौटाना संभव नहीं होगा। जब वस्तुओं का विनिमय होगा, तब उनकी गुणवत्ता के साथ कोई बदसलूकी नहीं कर पायेगा। मूल वस्तु के साथ मूल वस्तु का विनिमय होगा। ऐसे में वे सारे व्यय और विकार आपोआप घट या हट जाएँगे, जो वस्तु की मौलिकता को अवमिश्रित करते हैं, और उसके साथ अन्धी व्यापारिकता को जोड़ते हैं। गाँधीजी ने ऐसे ग्रामतन्त्र के अन्तर्गत विकसित ग्राम को 'स्वर्ग-का-बगीचा' कहा है।

हमारा यह मानना है कि 'भारतीय ग्राम तक विकास-की-झिरी शहरों से, या दुनिया के विकसित मुल्कों से पहुँचेगी'। यह ग़लत है। ऐसा करने या कहने से हमारी बुनियाद कमज़ोर होगी। सब जानते हैं कि जब तक समाज में समानता और अमन आविर्भूत नहीं होंगे, आतंक और हिंसा बने रहेंगे; तथा विकास के रुद्ध स्रोत खुल नहीं पायेंगे। हम दो क़दम आगे बढ़ेंगे और चार क़दम पीछे आयेंगे। यह गणित अवनति और विनाश का गणित है, इसे हम उत्थान और विकास का गणित नहीं कह सकते।

जब तक हम छोटे पैमाने पर, बैंकों-के-जाल से मुक्त हो कर – उत्पादन की प्रक्रिया में नहीं आयेंगे, यह असंभव ही होगा कि हम मनुष्य और मनुष्य के मध्यवर्ती फासलों को घटा पायें। जब तक नफे की जगह समाज/जनहित के लिए उत्पादन की शुरूआत नहीं होगी, नयी समाज-रचना का शिलान्यास संभव नहीं होगा। यह मान कर चलना कि अर्थतन्त्र के बीज विकसित देशों से आयेंगे, और उनकी स्वस्थ फसलें भारतीय ग्रामों में पनपेंगी, बुनियादी तौर पर ही ग़लत है। हमारे गाँवों में विकास की अनगिनत उर्वर संभावनाएँ (पोटेंशिल्स) हैं; हम असल में उनका क़द छोटा करके उनके बारे में सोचने लगे हैं, और उस 'अनलिखे ज्ञान' (ग्राम-विज्ञान) को भूल रहे हैं, जो मैदान के जल को सिंचाई के लिए बगैर किसी यन्त्र की मदद के पहाड़ों पर चढ़ा ले जाता रहा है। मध्यप्रदेश के निमाड़ अंचल में इस तरह की सिंचाई-व्यवस्था को आज भी प्रत्यक्ष

देखा जा सकता है।

आज का उद्योगवर्ती अर्थतन्त्र प्रकृति को कमाई का साधन मान कर चलता है, उसके लिए पेड़-पौधे, नदी-झरने, पर्वत-पहाड़, वराह-हाथी, मछली-मुर्गी, केंचुए-खरगोश सब कमाई के जरिए हैं; इसीलिए वह इन सब का क्रूरतम दोहन करता है, और उनके प्रति जो भी क्रूरतापूर्ण और असम्मानजनक संभव है, उसे करने से नहीं चूकता। यही कारण है आज के अर्थतन्त्र ने जीवन-के-प्रति-सम्मान की भावना को नष्ट कर दिया है, और वह सिर्फ पूँजी के पीछे पिशाच की भाँति पड़ गया है। अहिंसा-का-अर्थतन्त्र हिंसा को छोटा/व्यर्थ करने का अर्थतन्त्र है। वह दुनिया के कोने-कोने में हिंसा और क्रूरता के क़द को छोटा करना चाहता है, और चाहता है कि सर्वत्र समता की संभावनाएँ फलें-फूलें। हमारी विनम्र राय में **जब दुनिया का हर गाँव स्व-क्षम जगत्वर्ती गाँव बनेगा तभी विश्व-शान्ति की कल्पना साकार होगी अन्यथा वह यावच्चन्द्रदिवाकरौ स्वप्न बनी रहेगी।**

जापान एक ऐसा देश है, जिसने औद्योगिक क्रान्ति का अधिकतम दोहन करते हुए भी प्रो. काओरू यामागुची की 'सक्षम जगत्वर्ती ग्राम' (सस्टेनेबल ग्लेबल विलेज) की अवधारणा को जन्म दिया है। प्रो. यामागुची ने इस ग्राम-अर्थतन्त्र को 'म्युराटोपिअन अर्थतन्त्र' का नाम दिया है। 'म्युरा' जापानी का शब्द है, जिसका अर्थ है 'ग्राम' – एक ऐसा ग्राम, जहाँ के लोग आत्मनिर्भर हों, परम्परित रीत-रिवाजों में आस्था रखते हों, प्रकृति के प्रति जिनके मन में सम्मान की भावना हो, और जो अवकाश में एक-दूसरे की मदद के लिए कमर कसे हों। जब हम 'म्युरा' शब्द का विखण्डन करते हैं, तब हमें 'म्युराटोपिअन' अर्थतन्त्र की खूबियों का और अधिक गहराई से पता चलता है। 'म्यु' का अर्थ है 'न होना' (नथिंगनेस) तथा 'रा' का अर्थ है 'अपरिग्रह' यानी 'स्वामित्व-की-अनुपस्थिति'। यहाँ इस तरह 'म्युरा' का अर्थ हुआ 'कुछ न होना' अर्थात् मालिकी का विसर्जन, उसकी गैरहाजिरी। 'टोपिआ' ग्रीक शब्द है, जिसका अर्थ है 'जगह'। इस तरह कुल मिला कर 'म्युरा' एक ऐसी जगह हुआ जहाँ आगामी युग की नयी समाज-रचना का सूत्रपात होगा।

सहज ही सवाल उठता है कि इस नयी समाज-रचना के आधार क्या होंगे?

आज हम देख रहे हैं कि यन्त्रोद्योग-प्रधान समाज-रचना सफल नहीं हुई है। चारों ओर प्रदूषण है, महामारियाँ हैं, भुखमरी और गरीबी है, कृत्रिम अभाव बने हुए हैं। पूँजीखोर-बाज़ारोन्मुख-सट्टेबाज़ अर्थतन्त्र ने विश्व-की-रीढ़ क्षत-विक्षत कर दी है। साम्यवादी अर्थतन्त्र परास्त हो चुका है। जो अर्थतन्त्र आज है, श्रीमती नंदिनी जोशी के अनुसार, उसके मुख्यतः छह आधार हैं– १. एक-जैसा माल (स्टैंडर्डाइज़ेशन); २. मनुष्य का एकांगी विकास (स्पेशियलाइज़ेशन); ३. प्रचण्ड व्यवस्था-तन्त्र (सिंक्रोनाइज़ेशन); ४. केन्द्रीकृत विकास (कंसेन्ट्रेशन); ५. अधिकतम कमाई का ध्येय (मेक्ज़ेमाइज़ेशन); ६. आर्थिक तथा राजकीय सत्ताओं का केन्द्रीकरण (सेंट्रेलाइज़ेशन)। लेकिन जो ग्राम-तन्त्र क्षितिज पर आना चाहता है, उसके दो मुख्य आधार हैं – १. स्वावलम्बन; २. परोपकार या परस्पर-उपग्रह (एक-दूसरे की मदद अथवा एक-दूसरे के साथ जीवन्त हिस्सेदारी)।

अर्थतन्त्र के मुख्य लक्षण होंगे – उत्पादक और ग्राहक एक; मालिक-मजदूर एक; बचत करने वाला और खर्च करने वाला एक; मकान-मालिक और किरायेदार एक; प्रकृति के प्रति परिपूर्ण सम्मान अर्थात् उसे कमाई का साधन न मानना, न बनाना। इस तरह आने वाला मानव-समाज वह नहीं होगा जो आज मृग-मरीचिका की तरह हमारे जीवन में प्रवेश कर गया है, बल्कि वह 'म्युराटोपिअन अर्थतन्त्र' होगा जो दुनिया को अहिंसा और अपरिग्रह के जरिए अधिक सुन्दर और बेहतर बनायेगा। △ △

कविताएँ □□□ मुनि क्षमासागर □ कन्हैयालाल सेठिया □ गणेश ललवानी

एक

ये आज
हम, कल रच चुके थे
ये लकीरें
जो आज दिखी हैं
हम, कल रच चुके थे
ये बादल
जो आज बरसे हैं
कल भर चुके थे
हमारे पास आज के लिए
वक़्त ही कहाँ है
आज तो हम
आगामी कल रच रहे हैं
बड़ी बेफिक्री से
कल की फिक्र में
जी रहे हैं
काश!
हम आज में जीते
न कल करते
न आज होता
न आज करते
न कल होता!

—मुनि क्षमासागर

दो

उगाने के
लिए बीज
बहुत है
गमले की एक मुट्ठी धूल
पर चाहते
अगर
संस्कारित मूल
स्वस्थ फल-फूल
सौंप दो इसे
स्नेहशीला
धरती को।

—कन्हैयालाल सेठिया

तीन

सर्प की भाँति
एकाग्र दृष्टि से संयम-पालन
लोहे के यव चबाना है।
*
संयम बालू के ग्रास की भाँति
नीरस और स्वादहीन है,
तपश्चरण
असिधार पर विचरण करना है।
*
तरुण वयस में श्रमण धर्म ग्रहण
प्रदीप्त अग्नि-शिखा को पान करना है।
हीनवीर्य पुरुष के लिए
श्रमण धर्म ग्रहण करना
वस्त्र के थैले में
वायु भरना है।
*
मेरु पर्वत को जिस तरह
तुला पर तौला नहीं जा सकता,
विषय में असंदिग्ध
और सर्वदा शंकाहीन हो कर
विचरण भी
ठीक उसी प्रकार कठिन है।
*
निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है,
निर्ग्रन्थ प्रवचन श्रेय है,
निर्ग्रन्थ प्रवचन ग्रहणीय है,
किन्तु उसका आचरण
क्षुर[1] की धार की भाँति निशित[2]
है।

—गणेश ललवानी

---

१ छुरा २ तेज, शान पर चढ़ा हुआ।

तमिलनाडु के जैन मन्दिर

ईसा-पूर्व प्रथम शताब्दी में सुविख्यात संत तिरुवल्लुवर हुए, जिन्होंने 'तिरुक्कुरल' नामक महान् सांस्कृतिक/नैतिक मार्गदर्शक ग्रन्थ की रचना की। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि ये ऐलाचार्य थे तथा इन्हें जैन साहित्य में 'कुन्दकुन्दाचार्य' के नाम से पुकारा जाता है।

—दुलीचन्द जैन

जैनधर्म भारतवर्ष के प्राचीनतम धर्मों में-से एक है तथा भारतीय संस्कृति एवं परम्परा का अविभाज्य अंग है। मोहन-जो-दड़ो एवं हड़प्पा की खुदाइयों में कायोत्सर्ग मुद्रा (जैन साधकों की ध्यान-मुद्रा) में उपलब्ध मूर्तियों से पता चलता है कि यह धर्म कम-से-कम पाँच सहस्र वर्ष प्राचीन है। श्रमण भगवान् महावीर, जो जैनधर्म के २४ वें एवं अन्तिम तीर्थंकर थे, के निर्वाण को ही २५०० वर्षों से अधिक का समय व्यतीत हो चुका है।

अत्यन्त प्राचीन काल से ही तमिल प्रदेश विभिन्न धर्मों का संगम-स्थल रहा है। वैदिक, बौद्ध तथा जैन आदि अनेक मत यहाँ फैले तथा उन्हें राज्याश्रय प्राप्त हुआ। ईसापूर्व तीसरी सदी में मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के शासनकाल में उत्तर भारत में बारह वर्षों का भीषण अकाल पड़ा था, जिसके फलस्वरूप सम्राट् चन्द्रगुप्त अपने गुरु श्रुतकेवली भद्रबाहु और उनके सहस्रों शिष्यों के साथ दक्षिण की ओर आये तथा कर्नाटक प्रदेश के श्रवणबेलगोला नामक स्थान पर उन्होंने अपना पड़ाव डाला। कर्नाटक से विशाख नामक महान् प्रतिष्ठाधारी मुनि ने अपने शिष्यों के समुदाय के साथ तमिल प्रदेश में प्रवेश किया। तमिल प्रदेश में उन्हें बहुत सम्मान मिला। यहाँ पूर्वकाल से ही आदिजिनेश्वर ऋषभदेव तथा अन्य तीर्थंकरों की अहिंसात्मक संस्कृति विद्यमान थी, अतः उन श्रमणों को यहाँ कोई कठिनाई नहीं हुई। उनकी धर्माराधना निर्विघ्न चलती रही। ईसापूर्व तीसरी-चौथी शताब्दी से ले कर ईसा की आठवीं-नवीं शताब्दी तक जैनधर्म का प्रभाव तमिलनाडु के जन-जन पर छाया रहा। यह पुटुक्कोट्टै, मदुरै, रामनाड, तिरुनलवेलि जिलों की कन्दराओं-में-प्राप्त अभिलखों तथा चिह्नों से प्रमाणित हो चुका है। समस्त तमिल प्रदेश में जैन श्रमण-श्रमणियाँ फैल गये तथा कुछ नगर तो प्रमुख रूप से जैनों के गढ़ ही बन गये जैसे मदुरै, कावेरीपूम्पाट्टिणम्, तिरुच्चिराप्पल्ली, कांची, कुम्भकोणम्, पुदुक्कोटै, कड़लूर, तिरुपरुट्टिकुंड्रम, मैलापुर आदि।

लगभग एक सहस्र वर्ष के जैन प्रभुत्वकाल में अनेक आचार्यों एवं संतों ने इस प्रदेश में विशेष लोकप्रियता प्राप्त की। 'तोल्याप्पियन्' ग्रन्थ तमिल भाषा की प्राचीनतम कृति है। इसके रचयिता जैन संत तोल्काप्पियन थे। ये महान् मणिमाधारी (प्रतिमाधारी) तपस्वी थे। ईसापूर्व पहली शताब्दी में सुविख्यात संत तिरुवल्लुवर हुए जिन्होंने 'तिरुक्कुरल' नामक महान् ग्रन्थ की रचना की। **कुछ विद्वानों की मान्यता है कि ये ऐलाचार्य थे तथा इन्हें जैन साहित्य में कुन्दकुन्दाचार्य के नाम से पुकारा जाता है।** ईसा की दूसरी-तीसरी शताब्दी में श्रमण इलंगो अडियल का उदय हुआ जो चेर राजा शेंगुट्टुवन के छोटे भाई थे। तमिल के प्रथम महाकाव्य 'शिलप्पधिकारम्' की रचना का श्रेय इन्हें प्राप्त है। इसके अतिरिक्त अकलंक, गणिनन्त, पूज्यपाद, सर्वनन्दी, गुणवीरसागर, मतिसागर, वामनमुनि, तिरुत्तक्कवर, तोलामोलदेवर आदि महान् तेजस्वी संतों तथा आचार्यों की पुण्यस्थली

भी यह प्रदेश रहा है।

इस प्रकार के वातावरण में इस तमिल प्रदेश में जैन साहित्य, कला, संगीत एवं स्थापत्य आदि उच्चतम विकास होना अवश्यम्भावी था। संत तिरुतक्कदेवर ने 'जीवक चिंतामणि' महाकाव्य की रचना की। तमिल के सुप्रसिद्ध व्याकरणग्रन्थ 'नन्नूल' के रचनाकार भवनन्दी जैन थे। तीर्थंकर नेमिनाथ की स्तुति में रचित 'नेमिनाथम्' ग्रन्थ के रचनाकार गुणधीर पण्डित थे। जैन कृति 'चूड़ामणि' के सृजेता तोलामोलिदेवर थे।

पल्लवनरेश सिंहवर्मन्, सिंहविष्णु, महेन्द्रवर्मन, पांड्य नरेश नेडुमारन्, कांचीपति शिवकोटि आदि राजेमहाराजे श्रमणधर्म के महान् समर्थक थे तथा इनके राज्य में यह धर्म खूब फला-फूला। सातवीं-आठवीं शताब्दी से इस मत का विरोध होना शुरू हुआ तथा दसवीं शताब्दी तक आते-आते यह एक प्रकार से तमिल प्रदेश से विलुप्त हो गया।

इस प्राचीन जैन संस्कृति के कुछ अवशेष गुफाओं, शिलालेखों, साहित्यिक ग्रन्थों तथा मन्दिरों में प्राप्त होते हैं। यद्यपि काल के प्रभाव से अधिकांश जैन मन्दिर, भवन एवं बस्तियाँ नष्ट हो गयीं फिर भी जो कुछ वर्तमान में बचा हुआ है, वह इस महान् धर्म के व्यापक प्रभाव को अभिव्यक्त करने में समर्थ है।

प्राचीन जैन मन्दिर एवं तीर्थ

श्री जिनगिरि तीर्थ

यह तीर्थस्थान तिरुनरुंकोण्डे गाँव के पास एक पहाड़ी पर है। यह उलुन्दूरपेट गाँव (दक्षिण अर्काट) से ५ कि मी दूर है। यहाँ मन्दिर में तीर्थंकर पार्श्वनाथ एवं चन्द्रप्रभु की भव्य प्रतिमाएँ हैं। मन्दिर में तीन नयनाभिराम शिखर हैं। ये तीनों शिखर चोल वंशीय कला के नमूने हैं।

यहाँ जैन मुनियों के आवास-स्थान तथा तपस्या के लिए गुफाएँ बनी हुई हैं, जो तीसरी से पाँचवीं शताब्दी प्राचीन हैं। इस क्षेत्र की अभिवृद्धि में राजराजचोल प्रथम, राजेन्द्रचोल प्रथम, कुलोत्तुंगचोल प्रथम, पाण्डिय एवं विजयनगर नरेशों के वंशजों का उल्लेख शिलालेखों में मिलता है। चोल नरेश की बहिन राजकुमारी कुंदवै ने यहाँ एक जलाशय का निर्माण कराया था, जो आज भी विद्यमान है। शिखरों पर अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बहुत आकर्षक हैं।

यह तीर्थ प्राचीन काल में अनेक मुनियों की तपोभूमि के रूप में प्रसिद्ध रहा है। नन्दि संघ के महागुरु आचार्य वीरनन्दि का यहाँ आवास था। 'चूलामणि निगण्डु' नामक तमिल ग्रन्थ के रचयिता श्री गुणभद्राचार्य यहीं वास करते थे।

श्री विजयमंगलम् तीर्थ

यह मन्दिर ईरोड से २० किमी दूर वस्तिपुरम् गाँव में स्थित है। तीर्थ के चारों ओर विशाल परकोटा है। यहाँ तीर्थंकर चन्द्रप्रभु की सुन्दर कलात्मक मूर्ति है। द्वार के ऊपर का उत्तुंग शिखर दूर से ही यहाँ के गौरव की याद दिलाता है। मन्दिर के स्तम्भों एवं छतों में भगवान् के पंचकल्याणक-वैभव तथा चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियाँ अंकित हैं। इसी तीर्थ में तीर्थंकर आदि भगवान् एवं भगवती अम्बिका देवी की प्रतिमाएँ दर्शनीय हैं।

छठी सदी में यह प्रदेश कोंगुनाडु के २४ नगरों में मुख्य नगर था। यहाँ के राजा कोंगुवेलिर थे, जिन्होंने

इस विशाल तथा कलात्मक मन्दिर का निर्माण कराया था। ईसा की छठी सदी में यहाँ तमिल-कोविदों का एक संघ था; जिनमें-से पाँच कोविदों की मूर्तियाँ भी यहाँ स्थित हैं। वर्तमान में इसे 'अमनेश्वर मन्दिर' भी कहते हैं।

श्री पोन्नुरमलै तीर्थ

यह टिण्डीवनम् से ४० किमी, वंदवासी से १० किमी एवं पोन्नूर गाँव से ३ किमी दूर है। यहाँ भगवान् महावीर की नयनाभिराम मूर्ति है।

यह प्राचीन तीर्थ ईसा की प्रथम शताब्दी में स्थापित हुआ था। उस समय जैनधर्म के महान् प्रभावी आचार्य कुन्दकुन्दाचार्य ने इसे अपनी तपोभूमि बनाया था। यहाँ पास में पहाड़ी पर आज भी आचार्य कुन्दकुन्द के चरण-चिह्न विद्यमान हैं। पहाड़ का वातावरण बड़ा शान्त और निर्मल है तथा ध्यान-साधना के अनुकूल है।

आचार्य कुन्दकुन्द जैनधर्म के युग-संस्थापक आचार्य थे। वे द्राविड़ संघ के महान् मुनि-पुंगव थे। इन्होंने सैकड़ों सुप्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना की। **इनके द्वारा रचित 'तिरुक्कुरल' ग्रन्थ नीति, व्यवहार एवं अध्यात्म का अद्वितीय ग्रन्थ है, जो विद्वानों का ही नहीं जन-जन का हृदय-हार बना हुआ है।** यद्यपि इनका जन्म आन्ध्रप्रदेश के गुंटकल नगर के निकट कोण्डकोण्डा गाँव में हुआ था पर आपने इसी स्थान पर साधना एवं साहित्य का सृजन किया था।

श्री मुनिगिरि तीर्थ

यह कांचीपुरम् से १५ किमी दूर करन्दे गाँव में स्थित है। यहाँ तीर्थंकर कुंथुनाथ की भव्य कलात्मक प्रतिमा स्थापित है। यह तीर्थ ईसा की तीसरी शताब्दी में जैन मुनियों की तपोभूमि था। राजराज चोल, राजेन्द्र चोल आदि अनेक शासकों ने इस मन्दिर को भेंटें दी थीं। विजयनगर साम्राज्य के श्री कृष्णदेवराय एवं रामदेवराय महाराज ने भी यहाँ मन्दिर को जमीन भेंट दी थी। यह ईसा की तेरहवीं शताब्दी तक बहुत ही समृद्ध एवं वैभवपूर्ण तीर्थस्थल था।

इस मन्दिर में तीर्थंकर पार्श्वनाथ, महावीर तथा आदिनाथ की भी मूर्तियाँ स्थापित हैं। यहीं पास में 'धर्मसागर' नामक ग्रन्थागार है, जहाँ विभिन्न भाषाओं में सहस्रों ग्रन्थ सुरक्षित हैं। ताड़पत्रों पर भी अनेक ग्रन्थ मिलते हैं।

अनेक सुप्रसिद्ध मुनियों की तपोभूमि होने के कारण इस तीर्थ का नाम 'मुनिगिरि' पड़ा। सुप्रसिद्ध जैनाचार्य अकलंक की यह पुण्यस्थली थी। आचार्य ने बौद्ध भिक्षुओं के साथ शास्त्रार्थ करके यहीं विजय प्राप्त की थी। यहाँ के भगवती अम्बिका के मन्दिर में आचार्य की मूर्ति स्थापित है।

श्री तिरुमलै तीर्थ

यह तिरुमलै गाँव के पास ३०० फुट ऊँची पहाड़ी पर स्थित है। यह गाँव उत्तर अर्काट जिले के वडमादिमंगलम् रेल्वे स्टेशन से ५ किमी दूर है। मद्रास से यह १२० किमी दूर है। यहाँ तीर्थंकर नेमिनाथ की खड़ी प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में है। तलहटी एवं पहाड़ पर अनेक प्राचीन प्रतिमाओं के दर्शन होते हैं। अनेक धातु-प्रतिमाएँ भी दर्शनीय हैं। पहाड़ पर कई जलकुण्ड एवं गुफाएँ हैं। एक गुफा में रंग-बिरंगे प्राचीन चित्र उत्कीर्णित हैं। इसी पहाड़ पर भगवान् पार्श्वनाथ का एक और मन्दिर है, जहाँ आचार्यप्रवर समन्तभद्र, ऋषभसेन एवं वरभद्र की चरण-पादुकाएँ हैं। पर्वत की तलहटी में पल्लव राजवंशों द्वारा निर्मित दो जिनालय हैं।

प्राचीन काल में यह तीर्थ अत्यन्त प्रसिद्ध जैन क्षेत्र था, जहाँ आठ हज़ार श्रमणों का विहार हुआ था। चोल एवं पल्लव शासकों के काल में यह एक सुविख्यात तीर्थ था। प्रथम चोल राजा की बहन कुंदवै ने यहाँ भगवान् नेमिनाथ के मन्दिर को स्थापित किया था, जो आज कुंदवै जलाशय के नाम से विख्यात है। चोल तथा पल्लवकालीन पचास से भी अधिक शिलालेख यहाँ आज भी सुरक्षित हैं। ये शिलालेख १०२३-२४ सदी के हैं। यहाँ विपुल संख्या में जैन बस्तियाँ थीं, जिनके उल्लेख शिलालेखों में मिलते हैं।

जैनधर्म के प्रभावक आचार्यों, सर्वश्री समन्तभद्र, ऋषभसेन, वरदत्त, वादिराज एवं गजकेशरी की यह तपोभूमि है। तमिल भाषा के अनेक ग्रन्थों की रचना यहाँ हुई थी। 'नेमिनाथम्' ग्रन्थ की रचना पण्डिदर (पण्डित) गुणवीर ने यहीं की थी। 'वचनन्दिमलै' नामक ग्रन्थ भी यहीं लिखा गया था। यह क्षेत्र तमिल प्रदेश की जैनबद्री (श्रवणबेलगोला) कहलाता है।

श्री जिनकांची तीर्थ

यह तीर्थ कांचीपुरम् शहर से ४ किमी दूर तिरुप्पतिकुण्ड्रम गाँव के विशाल परकोटे में अवस्थित है। मद्रास से यह ६० किमी दूर है। यहाँ भगवान् महावीर एवं चन्द्रप्रभु की सुन्दर प्रतिमाएँ हैं। मन्दिर के संगीत-मण्डप में छत पर प्राचीन सुन्दर कलात्मक चित्र तथा झाँकियाँ अंकित हैं। श्री आदिनाथ भगवान् के पाँच कल्याणक, भगवान् महावीर का जीवन-वृत्त एवं नेमिनाथ भगवान् के पूर्वभवों के वृत्तान्त मनमोहक चित्रों में अंकित हैं।

इस मन्दिर का निर्माण ईसा की सातवीं शताब्दी में पल्लव-नरेशों के काल में हुआ था। चीनी यात्रियों ने सन् ६४० में लिखा है कि यहाँ ८० जैन मन्दिर थे तथा एक बड़ी जैन बस्ती थी। नरेश महेन्द्र वर्मा एवं कुलोत्तुंग चोल प्रथम ने यहाँ काफी भेंटें दी थीं। लगभग ६०० वर्ष पूर्व विजयनगर साम्राज्य के नायक हरिहर के अमात्य दूरुगप्प दंडनायक ने यहाँ २० स्तम्भों वाला महामण्डप बनाया था। पल्लव नरेशों के आचार्य वामन की यह तपोभूमि है। यहाँ आचार्य के शिष्य पुष्पसेन के चरण-चिह्न अंकित हैं।

श्री मेलाचितामूर तीर्थ

यह तीर्थ जिनकांची मठ के नाम से भी सुविख्यात है। यहाँ भगवान् पार्श्वनाथ की भव्य प्रतिमा स्थापित है, जिसका सौन्दर्य अद्भुत और अद्वितीय है। मन्दिर बहुत कलात्मक है। कंगूरों और शिखरों पर मनमोहक मूर्तियाँ अंकित हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि यह प्राचीन काल में अति समृद्ध जैन बस्ती थी। यहीं भगवान् नेमिनाथ की मूर्ति स्थापित है। कहते हैं कि यह पहले मैलापुर में, जहाँ आज सेंट थोमस का गिरिजाघर है, स्थापित थी तथा उस मन्दिर के ध्वस्त होने पर यहाँ स्थानान्तरित की गयी थी। यह स्थान तिण्डिवनम् से ३० किमी दूर है। भट्टारकजी की गद्दी मन्दिर के पास ही है।

श्री मन्नारगुडी तीर्थ

यह मन्दिर मन्नारगुडी के हरिद्रानदी गाँव में है, जो कुम्भकोणम् से ३४ किमी दूर है। यह १२ वीं सदी में चौलन राजा के राज्यकाल में निर्मित हुआ था। तमिलनाडु के प्राचीन तीर्थों में इसका विशिष्ट स्थान है। यहाँ श्री मल्लिनाथ जिनेश्वर की अत्यन्त सुन्दर एवं आकर्षक मूर्ति है। साथ ही इस मन्दिर में श्री सरस्वती देवी, श्री पद्मावती देवी, श्री धर्मदेवी, श्री ज्वालामालिनी आदि देवियों की प्रभावशाली प्रतिमाएँ स्थापित हैं।

श्री पुड़ल तीर्थ (केशरवाड़ी)

यह तमिलनाडु का अत्यन्त प्राचीन तथा सुविख्यात तीर्थ-स्थल है। यह मद्रास नगर से १५ किमी दूर पुड़ल गाँव में रेडहिल्स से २ किमी दूर है। यहाँ आदि तीर्थंकर ऋषभदेव की भव्य प्रतिमा स्थापित है। यहाँ प्रभु पार्श्वनाथ की भी एक भव्य प्रतिमा है।

यह लगभग १५०० वर्ष प्राचीन तीर्थ है। चोलवंशीय राजा कुरुम्बर ने इस मन्दिर का निर्माण कराया था, जो कि महान् जिन-भक्त था। प्राचीन काल में इस तीर्थ को 'पुड़ल कोटालम्' कह कर पुकारते थे। इसी मन्दिर में भगवती पद्मावती देवी की भी अत्यन्त गरिमामयी मूर्ति स्थापित है। आज भी सहस्रों भक्तजन यहाँ निरन्तर आते रहते हैं। मन्दिर के पास ही विशाल धर्मशाला तथा भोजनशाला है, जहाँ सहस्रों भक्तजनों के आवास एवं भोजन की सुन्दर व्यवस्था है।

आधुनिक जैन मन्दिर

आधुनिक काल में भी अनेक जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ है। केवल मद्रास नगर में ही २४ जिनालय हैं, जिनमें-से जूना मन्दिर, नया मन्दिर तथा चूलै में स्थापित मन्दिर काफी प्रसिद्ध हैं। इन तीनों में चन्द्रप्रभु भगवान् की मूर्तियाँ स्थापित हैं। मिंट स्ट्रीट में एक गुजराती मन्दिर है, जहाँ हरे पत्थर की भगवान् पार्श्वनाथ की भव्य प्रतिमा स्थापित है। तमिलनाडु के प्राय: प्रत्येक जिले मे जैन मन्दिरों की स्थापना हुई है।

२० अगस्त ९४ को मिंट स्ट्रीट के नये चन्द्रप्रभु जैन मन्दिर में एक बहुत बड़ा चमत्कार हुआ। इस मन्दिर के निर्माण को आज ६ मास हुए थे तथा एक भव्य महोत्सव मनाया जा रहा था। भक्तजनों ने शाम ७ बजे १८०० आरतियों की पूर्णाहुति की। अचानक देवमूर्ति में-से केशर की बूँदें प्रकट हुईं तथा शीघ्र ही दीवारों, छतों इत्यादि से केशर प्रकट हुई। मन्दिर की संगमर्मर की दीवारों में केशर का पीलापन आ गया। अगले तीन दिनों तक सहस्रों व्यक्तियों ने इस चमत्कार को देखा तथा समाचार-पत्रों ने इसे प्रकाशित किया। जब आचार्य-प्रवर से इसका कारण पूछा गया, तो उन्होंने मात्र इतना ही कहा – 'यह तमिलनाडु एवं सारे भारतवर्ष की समृद्धि का संकेत है'।

वर्तमान सभी मन्दिर संगमर्रमर्र के बने हुए हैं तथा उनमें भव्य कलात्मक चित्र एवं झाँकियाँ चित्रित हैं।

ये सभी जैन मन्दिर युग-युगों तक मनुष्य-समाज को कर्म और पुरुषार्थ का, अहिंसा और अभय तथा त्याग और वैराग्य के संदेश देते रहें। □□

७०, शम्बुदास स्ट्रीट, मद्रास-६०० ००१

साल की सारी सुबहें तब नयी रोशनी दे सकती हैं, जब हम स्वयं को धूपस्नान के लिए पूरी तरह खुला छोड़ दें; कहीं कोई छुपाहट या दुराव न रखें। तीर्थों के झगड़े समाज-के-शरीर पर असाध्य कोढ़ हैं, क्यों हैं? क्या सचमुच यह रुग्णता लाइलाज है, या कुछ खास लोगों ने इन्हें अपनी जेबें बना रखा है? क्या इन-ऐसे व्यक्तियों पर पहचान के निशान नहीं बनाये जा सकते? क्या इन्हें पूरी बेदाग़ ईमानदारी के साथ पहचान कर सार्वजनिक रूप से धिक्कारा नहीं जा सकता? क्योंकि ऐसे नर-पिशाचों को, जो हिंसक लड़ाइयाँ बड़ी बेशर्मी से लड़ते हों, और समाज के स्वस्थ रुधिर में जहर घोलते हों, तुरन्त बहिष्कृत किया जाना चाहिये। हमारी विनम्र समझ में इन सारे झगड़ों की जड़ हमारी धार्मिक निरक्षरता है।

–'तीर्थंकर'; संपादकीय; मई १९७९

वर्ष १९९५ को

पूरी ताक़त से 'शाकाहार वर्ष' के रूप में संपन्न कीजिये

गाँव-गाँव और नगर-नगर में शाकाहार विज्ञान प्रशिक्षण शिविरों और कार्यशालाओं के आयोजन कीजिये और आम जनता को बताइये कि शाकाहार ही एक ऐसी साफ-सुथरी जीवन-शैली है जो अहिंसा-मूलक भारतीय संस्कृति की रक्षा कर हमें नयी समाज-रचना के स्वच्छ-स्वस्थ आधार प्रदान कर सकती है।

इन आयोजनों के लिए ताज़ा और
प्रामाणिक जानकारियों से भरपूर
डॉ. नेमीचन्द की नवीनतम कृति

शाकाहार-विज्ञान

पढ़िये : पचाइये : प्रचारित कीजिये : देश को
हिंसा, हत्या, क्रूरता, बर्बरता से बचाइये

***मूल्य-** पन्द्रह रुपये; **डाक-व्यय-** पाँच रुपये*

प्राप्ति-स्थान

प्रबन्धक, हीरा भैया प्रकाशन, ६५, पत्रकार कॉलोनी, कनाड़िया मार्ग,
***इन्दौर**-४५२ ००१, फोन : ४९०८०४*

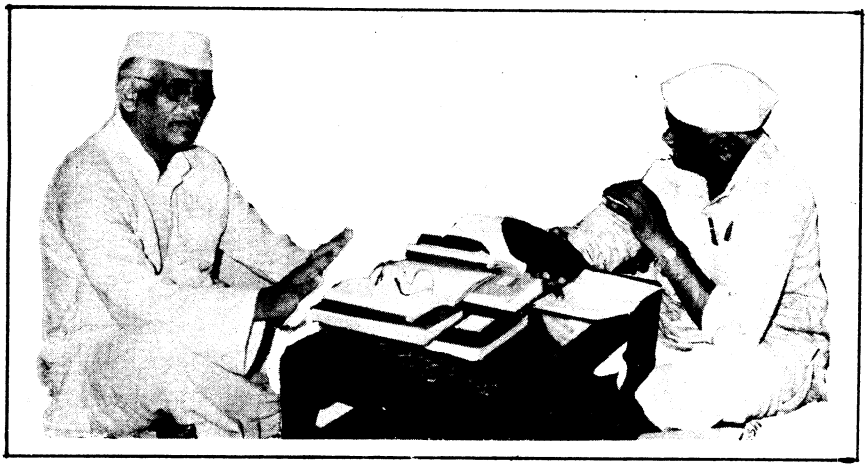

मुख़ातिब : खुद-ब-खुद

(गतांक से आगे)

ने.: मुझे याद पड़ता है आपने अपने किसी व्याख्यान में कहा था कि 'मूल वस्तु या कथन का महत्त्व तो होता ही है, उसकी व्याख्या और विस्तृति, उसका पल्लवन और उसकी टीका का भी महत्त्व होता है। जब तक कोई सही व्याख्या सामने नहीं आती, भ्रम और धुंध बने रहते हैं।'

जै.: इसमें ग़लत क्या है? ठीक तो है। ज्यादातर लोग मूल की ग़लत या स्वानुकूल व्याख्या कर बैठते हैं और जनता-जनार्दन को सदियों तक उलझाये रखते हैं।

ने.: क्यों होता है यह? क्या इसका कोई उपयुक्त हल नहीं है?

जै.: है; मगर लोग कोशिश ही कहाँ करते हैं, सम्यक्त्व तक पहुँचने की? माना, रास्ता कंटकाकीर्ण है; किन्तु सही वह है इससे मुँह कैसे मोड़ा जा सकता है? भाई, आज सब है, सिर्फ ईमानदार कोशिश का दुष्काल है। यदि किसी कथन को स्वाध्याय-के-परिवेश में संपूर्ण सद्भावना और नेकनीयती से लिया जाए तो उसके मूल तक पहुँचने में कोई कठिनाई नहीं है।

ने.: कोई मिसाल देंगे?

जै.: अवश्य; शास्त्रों से तो शायद नहीं दे पाऊँगा; हाँ, किन्तु सामान्य ज़िन्दगी से कोई उदाहरण दे कर अपनी बात स्पष्ट अवश्य करूँगा।

ने.: असल में व्यावहारिक/सामान्य ज़िन्दगी को सँवारना, उसे संतुलित/दिशा देना संभवतः हमारा शीर्ष कर्तव्य है।

जै.: बात श्रवणबेलगोला की है। मैं एक मन्दिर से दर्शनोपरान्त सहज ही निकल रहा था। भक्ति-विभोर था। मूर्ति विलक्षण थी। उसमें शिल्पी ने वीतरागता-का-चुम्बक अपनी टाँकी से कुछ इस तरह टाँक दिया था कि उससे बच पाना लगभग असंभव ही था। मैं भेदविज्ञान-वृष्टि में नख-शिख नहाया चला आ रहा था। अभी शायद मन्दिर के द्वार पर ही था कि एक दर्शनार्थी आये और मेरे कन्धे पर हाथ रख कर बोले – 'आपको इतना भी 'सेंस' नहीं है कि मूर्ति के साथ कैसा सलूक करना चाहिये?' मैंने कहा – 'मैं समझा नहीं'। बोले – 'इसमें समझने को कुछ भी नहीं है, कॉमन सेंस है; सिर्फ परम्परा का निर्वाह? लीक-लीक चलना।'

ने.: कौन था वह?

जै.: नाम की जगह मुझे तथ्य अधिक याद रहते हैं। मैंने कहा – 'मैं लीक-लीक नहीं चलता, परीक्षा-प्रधानी गृहस्थ हूँ'। वह चौंका, बोला – 'आपने प्रतिमा की ओर पीठ दे कर उसकी अविनय की है'। 'अविनय' – मैं स्तब्ध रह गया। मैंने कहा – 'अविनय तो आप कर रहे हैं, यह कह कर कि मैंने वीतरागता को पीठ दिखायी; असल में, मैं कायर नहीं हूँ – और ऐसा कुछ गंभीर है भी नहीं। सुनिये, श्रीमान्, पहले मैंने वीतरागता को सीने पर झेला, शिरोधार्य किया, अंजलि-बद्ध किया, उसके चरणों में मस्तक झुकाया और फिर शाबाशी पाने के लिए उसके सम्मुख पीठ कर दी। आप ही बतायें, जब तक कोई वीतरागी किसी नतमस्तक भक्त की पीठ नहीं थपथपायेगा, उसे वीतरागता के दुर्ग में प्रवेश कैसे मिलेगा? मैंने पीठ नहीं दिखायी, शाबाशी ली है।'

ने.: फिर–

जै.: फिर क्या, वह चौंका और चला गया; और मैं अपनी आकस्मिक/आशु तथ्य-व्याख्या पर मुस्करा पड़ा। ऐसा ही कुछ एक बार और हुआ।

ने.: कब, कहाँ?

जै.: एक दशक पूर्व – श्रीमहावीरजी में। मैं भक्ति-विह्वल, अंजलि-बद्ध प्रभु की आराधना कर रहा था। भगवान् महावीर से भगवान् आदिनाथ तक की संपूर्ण शृंखला आँखों के सामने थी। चित्त पर निर्मलता आसीन थी। अचानक हाथ फैल गये। लगा तीर्थंकरत्व के पंखों पर पता नहीं कहाँ उड़ा जा रहा हूँ।

ने.: कृपया, भावुक न हों, उदाहरण दें।

जै.: कुछ देर बाद मेरा ध्यान टूटा, और मैं भगवान् के चरणों में मस्तक नवा कर मन्दिर से बाहर आ गया। मुझे ख्याल ही नहीं था कि कोई व्यक्ति मेरे पीछे है, जिसने मेरी भक्ति-मुद्राओं को गौर से देखा है, और उसके मन में कुछ सवाल उठ खड़े हुए हैं।

ने.: कौन था वह?

जै.: याद नहीं पड़ता; था कोई स्वस्थ/साफ-सुथरा जिज्ञासु। बोला – 'जब आप प्रभु-स्मरण की प्रक्रिया में थे तब आपकी हथेलियाँ जुड़ी हुई थीं, और जब भावनाओं में गहरे उतर गये तब दोनों भुजाएँ फैल गयी थीं; ऐसा क्यों हुआ?'

ने.: शायद मैं भी ही पूछता।

ने.: मैंने कहा – 'जब मैंने आराधना शुरू की तब शरीर और आत्मा संयुक्त लगे; किन्तु जैसे-जैसे गहरे उतरता गया, लगा ये दोनों जुदा हैं। इनकी अस्मिताएँ/इनके अस्तित्व अलग हैं। एक जड़ है, एक चेतन। **भक्ति का अर्थ ही अविभक्त के दृढ़ जोड़ खोलना है। जब मैं भक्ति का सहारा ले कर भेदविज्ञान में गहरे उतर गया तो भुजाएँ स्वयमेव फैल गयीं। भ्रम टूट गया कि शरीर और आत्मा एक हैं। भुजाओं का फैलना भेदविज्ञान की अनुभूत की अनजान अभिव्यक्ति है।**

ने.: बात छोटी थी–

जै.: किन्तु निष्कर्ष गहरा था। हथेलियों के जुड़ने और जुदा होने की घटना में-से भी भेदविज्ञान की गहराइयों में उतरा जा सकता है। जो सामान्य होता है उसी में-से असामान्य के होने का संकेत मिलता है। प्रश्न सिर्फ सही अनुभूति और समीचीन व्याख्या का है।

ने.: कबीर ने वही किया था।

जै.: उसने दिन और रात के ताने-बानों से बुने जीवन-पट को धन्य किया था।

ने.: तभी तो अपनी महीन तन-चादर को वह प्रभु के चरणों में ज्यों-का-त्यों अर्पित कर सका था। उसने कोशिश की थी – ईमानदार प्रयास किया था।

जै.: उसने धागे-धागे में जीवन की जीवन्त धड़कनें सुनी थीं। उसके लिए हरेक रेशा संदेश बन गया था; इसीलिए उसने कहा है – 'धागा ज्यूँ टूटै त्यूँ जोरि। तूटै तूटनि होयगी, नाँ ऊँ मिलै बहोरि।।' **ग्रन्थियों में-से निर्ग्रन्थता की अनुभूति कुन्दकुन्द/कबीर की खूबी है।**

–क्रमशः

वारसअणुवेक्खा और इन्द्र-धनुष

आचार्य विद्यानन्द मुनि

'जलबुब्बुद' सक्कधणु, खणरुचि, घणसोहमिव थिरं ण हवे।
अहमिंदट्ठाणाइं, बलदेवप्पहुदि पज्जाया।।

–आचार्य कुन्दकुन्द, वारस अणुवेक्खा, ५

प्रतीक भाषा में संसार-की-अनित्यता का निरूपण करने वालों ने अनेक रोचक विधाओं का आश्रय लिया है। उन्होंने संसार की क्षणभंगुरता को गन्धर्व-नगर, विद्युत्-का-स्फुरण, जल-बुद्बुद का सद्भाव, लक्ष्मी-का-चांचल्य और प्रभात-का-तारा बताया है। आचार्य उसी अनित्य भावना को इन्द्रधनुष कहना चाहते हैं।

इन्द्रधनुष धूप और छाया का खेल है। क्षणभंगुर में इतना रूप-रंग और ऊँचे आकाश-का-आसन – लोग विस्मित हो कर देखने लग जाते हैं; परन्तु क्षणार्द्ध में ही इस सुन्दर रूप नाट्यमंच का पटाक्षेप हो जाता है। अब वहाँ श्याम-श्याम मेघच्छाया के अतिरिक्त कुछ नहीं है। अभी था और अब नहीं है – यही इन्द्र-धनुष की कहानी है।

आकाश की ऊँचाइयों पर उठ कर वह सम्पूर्ण लोक को 'अस्ति-नास्ति' का पाठ सिखा रहा है। लोग बाड़ पर चढ़ी हुई बेल के समान आशाओं-के-काँटों में उलझ रहे हैं, फिर भी फूल रहे हैं। नित्य पर्व, उत्सव, जन्म, विवाह के बधावे गाये जा रहे हैं, मानो समता को छोड़ कर ममता के सूत्रों को बल दे कर सुदृढ़ करने में लगे हुए हैं; परन्तु जब-तब इनमें-से एक-न-एक धागा टूटता रहता है, तो हर्ष-आनन्द, और प्रफुल्लता का राग मृत्यु-गीतों में बदल जाता है।

जन्मान्तक (जन्म-मरण) के द्वन्द्वों से घिरा मानव अपने को धन्य माने, इससे बड़ा इन्द्रजाल और क्या होगा? इन्द्र-धनुष रूपात्मक है। यह संसार भी नाम-रूपात्मक है। प्रत्येक पदार्थ का कुछ-न-कुछ नाम है, और रूप भी। आत्मा नाम और रूप से परे है। उसका न रूप है, न नाम। 'आत्मा', यह तो उसके अस्तित्व पर एक आरोप है। वस्तुतः उसका रूप-नाम नहीं है। शेष संसार नाम तथा रूप के गर्व में भ्रान्त हुआ भव-अटवी में घूम रहा है। नाम-रूप का अनुधावन करता वह मृगतृष्णाओं में जलाशयों की कल्पना कर रहा है। यह मृगजल संसार की अवस्था का निरूपण है। सो सच है भ्रम-भ्रान्ति का नाम ही 'मृगजल' है। मोहतृष्णाक्लान्त को बालू में जल का भ्रम हो रहा है, और असत् में सत् का विपरीत श्रद्धान। हाँ, यही भ्रान्ति ही तो मिथ्यादर्शन है, और बालू को नीर समझना मिथ्याज्ञान; तथा उसे पीने के लिए दौड़ पड़ना मिथ्याचरित्र है। रंग-रूप की सम्पूर्ण परिकल्पना ही मृगजल है।

तीव्र अशुभ के उदय से मनुष्य इस त्रिधा-मिथ्यात्व में निमग्न हो रहा है। यदि प्रकाश पूर्व में हो तो पश्चिम दिशा की ओर अनुधावन करने से उसकी प्राप्ति कैसे सम्भव होगी? **जो वस्तु जहाँ है, वहीं मिलेगी।** अन्यथा जन्म-जन्मान्तर की दौड़ व्यर्थ श्रम सिद्ध होगी। 'वस्तु कहीं, ढूँढ़े कहीं, किस विधि आवे हाथा' – यह सूक्ति यही बताने के लिए है। सूई के उल्टे सिरे पर धागा पिरोने में चाहे दिन लगाये या मास, या वर्ष, संपूर्ण जीवन, सफलता कैसे मिल सकती है? **सिद्धि के लिए उपायों की प्रामाणिकता उपयोगिनी है, दिन-मास-वर्ष नहीं;** इसीलिए मिथ्यात्व के मार्ग पर उभरे हुए पदचिह्न किसी सम्यक् दिशा का मार्ग नहीं बताते।

संसार को इन्द्र-धनुष कहने वालों ने संसार पर अनासक्ति का औचित्य सिद्ध किया है। वह ज्ञानचेतना-विशिष्ट जीव को स्वरूपबोध देने के समान है। अपने प्रताप से सम्पूर्ण भुवन को उत्तप्त कर देने वाला सूर्य

भी सान्ध्य क्षितिज पर उतर कर अस्त हो जाता है; किन्तु अल्पजीवी मनुष्य अपने जीवन को सदा सर्वदा के लिए स्थिर मान कर इन्द्र-धनुष के सप्त रंगों में ऐसा तन्मय हो जाता है कि उसके अस्तित्व को समाप्त करने वाली प्राण-किरण कब वहाँ से सरक कर उसे तिमिर में धकेल जाती है, यह उसे ज्ञात तक नहीं हो पाता। प्रायः जीवन-पर्यन्त वह मूर्च्छाओं से घिरा रहता है। दीर्घसूत्री के समान वह जब किसी पुरुषार्थ के लिए उठता है, तब तक कार्य का अवसर जा चुका होता है, और वह क्रिया-सिद्धि के योग्य नहीं रह जाता। इसी चेतावनी के लिए इन्द्र-धनुष अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य के साथ उदित होता है, और कहता है **समय को पहचानो, उसका मूल्यांकन करो।** जब वह आये, उसका सार ग्रहण कर अपने अंग-अंग में सौन्दर्य को समेट लो, ऊर्जा को संगृहीत कर लो, और क्षण-भर के लिए ही सही, अपनी सम्पूर्ण शक्तियों को लगा कर क्षितिज के आयामों को बाहुओं में समेट लो; क्योंकि 'यह पुर-पत्तन, यह गली बहुरि न देखो आय' – फिर अवसर मिलेगा कि नहीं; संशयापन्न है।

मनुष्य-पर्याय महान् अवसर है। कार्य-योग से इसकी प्राप्ति हुई है, दूसरी बार प्राप्त होना अतिकठिन है। इन्द्र-धनुष की रचना के संयोग क्या बार-बार आते हैं; अस्तु, अपनी चेतना शक्तियों को उद्‌बुद्ध कर आत्मोद्धार का पथ पहचानना श्रेयस्कर है।

इन्द्र-धनुष क्या है? सूर्य-किरणों का घनराजि पर प्रतिफलन मात्र। लोग इन्द्र-धनुष को देखते हैं, उसके उद्‌भव-केन्द्र को नहीं देखते। शरीर को देख कर मुग्ध हो रहे हैं, आत्मा के दर्शन नहीं कर पाते। विभावों पर आसक्त हैं, स्वभाव की सत्ता में समर्पित नहीं होते। जीवन-समुद्र के तटों पर मोती-भरी तरंगें उठ रही हैं, बगुले नहाते रहते हैं और हंस मोती चुग ले जाते हैं। अज्ञान में फँसा हुआ मनुष्य सम्यक्त्व के मुक्ताफलों से वंचित रहता है। मात्र इन्द्र-धनुष को देखने में लगे हुए व्यक्तियों का जीवन हाट-बाज़ार की रंग-बिरंगी मिठाइयों के देखने में ही व्यतीत हो जाता है। आचार्य अमृतचन्द्र अमृतभाष्य कलश-रूप काव्य में कहते हैं कि अज्ञान से ही संसारी आत्मा अपने को सब का कर्ता साबित कर रहा है:–

अमानान्मृगतृष्णिकां जलधिया धावंति पातुं मृगाः।
अज्ञानात्तमसि द्रवन्ति भुजगाध्यासेन रज्जौ जनाः।।
अज्ञानाच्च विकल्प चक्रकरणादद्धातोत्तरंगाब्धिवत्।
शुद्धज्ञानमयाऽपि स्वयममी कर्त्री भवन्त्याकुलाः।। –समयसार, कलश ५८

अज्ञान से क्या-क्या न नहीं होता? ग्रीष्मकाल में हिरण बालू की चमक को जल समझ पीने के लिए दौड़ लगाता है, और न मिलने पर खेद-खिन्न हो जाता है, अँधेरे में पड़ी रस्सी को सर्प मान अज्ञानी उससे डर कर भागने लगता है। इसी प्रकार यह आत्मा, पवन से क्षुब्ध हुए तरंगित समुद्र की भाँति, अज्ञान के कारण अनेक मिथ्या संकल्प-विकल्प करता हुआ क्षुब्ध होता है, और इसी तरह यद्यपि परमार्थ से यह आत्मा शुद्ध ज्ञानघन है, तथापि अज्ञान से कर्ता बन बैठा है।

जो भव्यात्मा पुरुष ध्रुवस्वरूप आत्मपदार्थ को छोड़ कर अध्रुवस्वरूप क्षणिक/अशाश्वत वस्तुओं, सांसारिक पदार्थों को हितकारक मान कर आसक्ति से सेवन करता है – ऐसे उस जीवन के नित्य अविनाशी शुद्ध आत्मगुण रूप, ध्रुव पदार्थ तो नष्ट हैं ही; अर्थात् उस ओर उस जीव की उपेक्षा होने से वह उसके ज्ञान में नहीं झलकने के कारण सर्वथा अज्ञात हैं; अतः वह एक प्रकार से स्वयं-त्यक्त विमुख हो ही गया, जो अध्रुव हैं – स्थायी नहीं हैं – ऐसे शरीर आदि संयोग पदार्थ वे भी स्वयं ही क्षणिक स्वरूप हैं; अतः 'शुद्ध जीवएंव ध्रुवः' – निश्चय से एक शुद्ध आत्मा ही ध्रुव है। □□

सम्मान करें जीवन का

□ जीवन-के-सम्मान को मैं सबसे बड़ा सम्मान समझता हूँ। जिसमें जीवन-के-प्रति सम्मान और आदर नहीं है, वह मानवता-के-घर में रहने वाला 'इ-कार-रहित शिव' है।

□ **मेरे लेखे, मूल जीवन से धर्म फिसल गया है। तप खूब हुआ, पर उससे क्रोध-कषाय का कूड़ा-कर्कट नहीं जला, बैंड-बाजों वाला मात्र जलसा-जुलूस ही निकला।**

□ *ऐसा लगता है कि जैसे सेवा और प्रेम को, दया और करुणा को, ध्यान और योग को, शाकाहार और पर्यावरण-विज्ञान को हम विदेशों को निर्यात कर रहे हैं, आखिर हमने विदेशों से आयात क्या किया है? अण्डे और मछलियाँ, शराब और सिगार, हिंसा और आतंक.....।*

—मुनि चन्द्रप्रभ सागर

मैं, अपनी बात जीवन से प्रारम्भ करता हूँ। जीवन शुभारम्भ है। जीवन ही अस्तित्व का व्यक्तित्व है। जीवन जगत् की आत्मा है, और जगत् जीवन का मन है। जगत् जीवन की ही प्रतिध्वनि है। जीवन के विस्तार का नाम जगत् है। जीवन से ही अस्तित्व की शुरूआत है और जीवन पर ही समापन। जन्म जीवन का मंगलाचरण है और मृत्यु अस्तित्व की विराटता में प्राणों का विलयन। जीवन है तो सारे मूल्य हैं, जीवन के अभाव में मूल्य का कोई अर्थ नहीं है।

जीवन सर्वोच्च मूल्य है। पृथ्वी की बड़ी-से-बड़ी सम्पदा से भी ज्यादा मूल्यवान! भला-बुरा, धरती पर जो कुछ भी किया जाता है, सब जीवन के लिए ही है। जीवन बनाने और बचाने के लिए है। औरों के साथ कोई कितना भी खिलवाड़ करे, पर अपने जीवन का सवाल आते ही हर आदमी सजग-सतर्क हो जाता है।

जो व्यक्ति जीवन-भर धन-दौलत बटोरता है, वह बटोरा हुआ, सारा उस समय धरा रह जाता है जब जीवन के बचने और न बचने का प्रश्न उपस्थित हो जाता है। भूकम्प आने पर हर कोई अपने जीवन को बचाना चाहेगा। वह विसार ही बैठेगा कि उसने इतनी सम्पदा अर्जित की है। कहते हैं न कि जान बची तो लाखों पाये। प्राण है तो सब है, निष्प्राण के लिए मात्र श्मशान/क़ब्रिस्तान है।

आखिर व्यक्ति इतनी हायतौबा किसलिए करता है? सबेरे से शाम तक इतनी मेहनत क्यों करता है? इतना घालमेल, झूठ-साँच आखिर किसलिए? एक ओर करुणा, तो दूसरी ओर क्रूरता, क्यों? हर सवाल का जवाब होगा— जीवन के लिए, जीवन के सुख-साधनों के लिए, जीवन से जुड़ी हर तृषा को शान्त करने के लिए। विज्ञान है तो जीवन के लिए, नित-नये आविष्कार हैं, तो जीवन के अस्तित्व के लिए, अध्यात्म और शास्त्र हैं तो जीवन को ऊँचा उठाने के लिए। धन-दौलत, परिवार, नौकर-चाकर, वैभव, सब जीवन की परितृप्ति और उपलब्धि के लिए हैं।

जीवन के उत्थान के लिए ही इतने विद्यालय-विश्वविद्यालय खुले हैं, जीवन की स्वस्थता के लिए ही इतने चिकित्सालय और चिकित्साविद् लगे हैं। चलचित्र से ले कर राजनीति तक और अखबारों से ले कर उपनिषदों तक के सारे क्षेत्र-परिक्षेत्र जीवन के धरातल पर ही फल-फूल रहे हैं; इसलिए **जीवन धरती का पहला आराध्य और पहली आराधना है।**

किसी को पूछा जाए तुम्हें शिव-शंकर वरदान देना चाहें तो तुम क्या माँगोगे? शायद ही कोई शिव से

शिवत्व चाहे। सबका अपना-अपना दुखड़ा है, अपना-अपना रोना है। जीवन/जगत् दुख का दरिया न हो, तो भगवान् को कौन भजेगा? सुख के स्वार्थ की खातिर ही मनुष्य की आराधना-उपासना है।

जीवन के लिए जीवन का अर्थ है, स्वार्थ-परार्थ का नहीं। जीवन तो जीवन ही है फिर चाहे वह अपना हो या किसी ओर का। जीवन के प्रति श्रद्धा का साधारणीकरण हो जाए, तो स्वार्थ-परार्थ की अलगाववादी भेद-रेखाएँ भर जाएँ। फिर सिर्फ अर्थ होगा, अर्थवत्ता होगी। आदर होगा, वह आदर ही उपासना होगी।

जीवन-के-सम्मान को मैं सबसे बड़ा सम्मान समझता हूँ। जिसमें जीवन के प्रति सम्मान और आदर नहीं है, वह मानवता के घर में रहने वाला इकार-रहित शिव है। परमात्मा तो बहुत दूर की बात है, उसमें मानवीय प्रेम, करुणा, अहिंसा और भाई-चारे का भी नामोनिशान नहीं होगा। वह वंचित है जीवन के रस से, जीवन के आनन्द से, जीवन की उपलब्धियों और मूल्यों से, जीवन के परिपूर्ण उत्सव से।

आत्म-संत्रास, आत्म-हत्या के दौर से गुजरते विश्व को आज मात्र ईश्वर की उपासना और उसके पूजा-स्थलों पर मत्था टेकते रहने की आवश्यकता नहीं है, उसके लिए प्राथमिक धर्म, हृदय में जीवन के प्रति सम्मान और आदर को प्रतिष्ठित करना है। जीवन चाहे मेरा हो या तुम्हारा, जीवन तो जीवन ही है। जहाँ जीवन है, वहाँ ईश्वर का नूर है, जीवन का सम्मान घट-घट में बसने वाले परमात्मा का ही अभिवादन है, ईश्वर-अल्लाह की इबादत है।

मुझे खेद है, धरती पर अब तक इतने धर्म पैदा हुए, सैकड़ों-हज़ारों की संख्या हो जाएगी अगर गिनो तो, जहाँ देखो ईश्वर की उपासना पर ही सर्वाधिक बल दिया है। जीवन-की-पूजा करना किस धर्म ने सिखाया है? मनुष्य को मनुष्य बनाना किस धर्म ने अपना खास इल्म बनाया? मानव की सेवा के कितने मन्दिर बने? भारत को ही लें। यहाँ तो दो तरह के धर्म हैं—एक तो वे जो ईश्वर का नाम जपने पर, पूजा-स्थलों में मालाएँ फेरने पर ज़ोर देते हैं। तो नतीजा यह निकला कि भारत की पौनी न सही, तो कम-कम से कम आधी आबादी तो जीवन के वरदानों को हासिल करने के लिए ईश्वर को ही खुश करने में लग गयी। यदि वह ईश्वर को भी सही तौर पर स्वयं में निहार लेती, तो बात बन जाती, पर ईश्वर तो न जाने उससे कितना पीछे छूट गया। वह अपने ही हाथों माटी-पत्थर की बनायी छवियों को ईश्वर मान बैठा। उसे ही पूजने लगा। उस पर दूध और चंदन का अभिषेक करने लगा। ईश्वर की कितनी पूजा हुई, यह तो ईश्वर जाने, पर पंडे-पादरी-पुजारियों के स्वार्थ सधते रहे।

कोई ऐसा करे, मुझे एतराज नहीं, पर ईश्वर का इतना महान् भक्त कहलाने वाला इंसान, इंसान को ही दुत्कार बैठे। इंसान-इंसान के बीच सवर्ण-हरिजन, ऊँच-नीच, गोरे-काले की घृणा-भरी लौह दीवारें खड़ी करे, तो यह कौन-सी उपासना हुई? तुम आसमान के तारों को गिनते फिरो और पाँव के पास खिले फूलों को रौंदो, या नज़र-अन्दाज़ करो, यह कौन-सा धर्माचरण या चरित्र हुआ। मानवता भूखी मरे और हम दिनों-दिन अखण्ड दीप के नाम पर घी का जुगाड़ करते फिरें, आखिर किस धर्म-प्रवर्तक ने कहा, तुम दीयों को घी पिलाते रहो? **बेहतर होता, इंसान को ही एक दीप समझा जाता। उसे ही ज्योतिर्मय और जीवित रखने के लिए उसमें घी का अर्घ्य-दान किया जाता! मानव, मानव के काम आता!**

एक ओर अट्टालिकाएँ बन रही हैं, दूसरी ओर झोपड़ियाँ उजड़ रही हैं। भवन व्यक्ति के स्वार्थ हैं। गिरजे-गुरुद्वारे मनुष्य के परमार्थ हैं। क्या सड़क पर नंगे बदन ठंड में ठिठुरते सोने वाले व्यक्ति को रहने के लिए एक कुटिया बना कर देना परमार्थ नहीं है? क्या उसके बदन पर मोटा/सस्ता ही सही, एक कंबल ओढ़ा

देना क्या परमात्मा की निष्काम सेवा नहीं है? प्रतिमूर्ति पर तुम सोने के जेवरात चढ़ाओ, यह है तुम्हारी श्रद्धा का अतिरेक! पर मन्दिर की सीढ़ियों के पास दो-दो पैसे भीख माँगते आदमी का पेट भरवाने की व्यवस्था करवाना परमात्मा के स्वर्णाभिषेक से कम कीमती नहीं है। वैभवशाली पूजा-स्थलों के सामने खड़ा भूखा-बे-सहारा इंसान। मनुष्य की परमार्थ-प्रक्रिया पर इससे बड़ा व्यंग्य क्या होगा!!

कई लोग किसी प्रतिमूर्ति को बैठाने के लिए लाखों-करोड़ों का चढ़ावा बोल जाते हैं। किसी परम्परागत स्वीकृत वस्तु को 'दर्शन' कराने या माला पहनाने के लिए धन खर्च करने की होड़ लगाना, जलसों में हाथी-घोड़ों की ऐश्वर्यपूर्ण कतार दिखाने के लिए अनाप-सनाप खर्च करना, जो ऐसा करते हैं यह उनकी मौज!! पर ऐसे लोग रुग्ण मानवता की कितनी सेवा कर रहे हैं? अस्पतालों, अनाथालयों, विकलांग-केंद्रों में अपना तन-मन-धन का कितना अवदान दे पाते हैं? हाँ, मानवता की सेवा और उत्थान की बातें तो चाहे जितनी बघरवा लो, पर करने के नाम पर टाँय-टाँय फिस्स।

हर पूजा, पूजा-पद्धति, और पूजा-स्थल का अपना महत्त्व है, आवश्यकता है, पर इनका महत्त्व और बढ़ सकता है। यदि हमारे मन में जीवन-के-प्रति सम्मान जगे। फिर हम इनका उपयोग भी जीवन के लिए करेंगे, न कि अपने स्वार्थ के लिए या परलोक को सुधारने के लिए। हम धर्म के क्रिया-काण्डों में तो गहराई तक गये। सूक्ष्म-से-सूक्ष्म तत्त्व को भी पकड़ा, चींटी को बचाने की काफी कोशिशें की गयीं पर मनुष्य..... **मेरे लेखे, मूल जीवन से धर्म फिसल गया। तप खूब हुआ, पर उससे क्रोध-कषाय का कूड़ा-कर्कट नहीं जला, बैंड-बाजों वाला मात्र जलसा ही निकला। भिक्षु का काषाय वस्त्र तो सदा ओढ़ा जाता रहा, पर अन्तर के कषाय नहीं छूटे।** आराधना खूब हुई, पर पाप से प्रतिक्रमण नहीं हुआ। हमने केवल अपने पुत्र की चिन्ता की, ओरों के लिए दवा में मिलावट, घी में मोम, मैदा और चर्बी मिलाने में एक नन्हीं-सी हिचकी भी नहीं खायी। मछलियाँ तो सूखी थीं, इसलिए उनकी कलचक्की में पिसाई को बुरा न माना। भैंसें-बकरे हमने तो नहीं काटे, इसलिए चमड़े का आयात-निर्यात बेझिझक स्वीकार किया। अण्डा खाना और शराब पीना तो आम हो गया है। **मैं पूछूँगा तुम जब चींटी को बचाना चाहते हो, तो खुद को मारने पर क्यों तुले हो? चींटी को नुकसान पहुँचाना अहिंसा का उल्लंघन है, तो अपने को नुकसान पहुँचाना अणुव्रतों का अतिक्रमण नहीं है?** तुम सिगरेट-तम्बाकू खा-पी कर अपनी ही धमनियों में ज़हर फैला रहे हो। यह आत्मघात है। अखबारों में रोज़-ब-रोज़ छप रहा है, पढ़ कर भी अनपढ़ से बने रहे हैं। वैधानिक चेतावनी : सिगरेट पीना/तम्बाकू खाना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। कहीं यह अन्धे को तो दीप-दान नहीं हो रहा है।

लोग ऐसे काम कर जाते हैं, जिनसे जीवन का अपघात होता है, जीवन के मूल्यों का अवपतन-अवमूल्यन होता है। जीवन का मूल्य कोई समझे तब न!! ग़लत और बदी की आदत नसों में खून की तरह समा गयी है। एक बात ऐसी सिद्ध हो चुकी है : आदमी कितना भी ग़लत-से-ग़लत काम कर ले, समाज के बीच बैठ कर दो-पाँच लाख का दान कर डाले, समाज द्वारा अभिनन्दन, फूलमालाएँ, प्रशस्ति-पत्र तैयार! तस्करों को भी, रिश्वतखोरों को भी, मिलावटियों को भी!!!

आखिर मनुष्य की यह बदतर हालत कैसे हुई? मनुष्य का जीवन-के-प्रति इतना उदासीन और संत्रस्त भाव आखिर क्यों हुआ? इसलिए कि हमने इस जीवन का, धरती का, पृथ्वी-गृह का मूल्य कभी आँका ही नहीं। हमारे लिए सदा स्वर्गलोक मूल्यवान रहे। यह धरती ही एक स्वर्ग बने, ऐसा प्रयास कहाँ/कब हुआ? फिर उसे ईश्वर-पुजारी कम, ईश्वर-भीरु अधिक बनाया गया। उसे पुण्य करने की बात कही, ताकि उसका

परलोक सुधरे यानी हमारी नैतिकता, उपासना का फल मृत्यु के बाद! जीवन में कुछ नहीं? दृष्टिगत हो रही धरती पर कुछ नहीं?

जीवन के प्रति आदर-भाव आये तो धरती और धरती-वासियों के निःश्रेयस् के भाव स्वतः स्फुरित हों। और फिर जो बात, एक युग में मान ली गयी उसे हर युग में दोहराने और बनाये रखने का दुराग्रह हम इस क़दर करते गये कि जिन युगों को हमने जी कर छोड़ डाला, उन्हें धर्म और सिद्धान्तों के रूप में सदा-सदा कहने-करवाने का प्रयास किया। युग प्रगति करते गये, पर वे पुरानी बातें धर्म के नाम पर ज्यों-की-त्यों ओढ़ायी जाती रहीं। नतीजा यह निकला कि धर्म केवल उपदेश का फार्मूला बन गया। धर्म-प्रवर्तकों को तिथि-त्यौहारों को याद कर लिया जाता है। **युवा, धर्म से इतना कोसों आगे चला जाता है कि भूले-भटके, छटे-छमासे भी उसकी सूरत धर्म-स्थानों में निहारने को मिल जाए, तो बलिहारी!**

धरती पर धर्मों की कमी नहीं है। अगर कमी है तो धार्मिक चेतना की है। मनुष्य के हाथ में धर्म नहीं, वरन् धर्म का ऊपरी कलेवर रह गया है। मशाल की आग बुझ गयी मशाल के नाम पर अब सिर्फ डंडे और हथकंडे रह गये हैं। धर्म-विस्तार के नाम पर अगर कुछ हो रहा है तो सिर्फ नारेबाजी हो रही है, पोस्टर-फीलर लग रहे हैं, बैंड-बेनर का हो-हल्ला हो रहा है। आत्म-जागरण और जीवन रूपान्तरण की चेतना न जाने किस कथरी को ओढ़े दुबकी बैठी है।

धर्म-चेतना पर ज़ोर दिया जाना चाहिये; धर्म के विस्तार में नहीं, वरन् धर्म की गहराई में दिलचस्पी होनी चाहिये। धर्म का सार निष्काम सेवा है। अध्यात्म की सार्थकता निःस्पृह भावना में है। 'परोपकाराय पुण्याय, पापाय परपीडनम्'। परोपकार को, समाज-सेवा को पुण्य मानो और पर-पीड़ा पर-अहित को पाप समझो। पर यह होगा तभी जब हमारी दृष्टि में जीवन का मूल्यांकन हो। मूल्य-स्वीकृति के अभाव में स्व-पर का, कथनी-करनी का, सिद्धान्त-व्यवहार का दुराव बना रहेगा।

जीवन-के-प्रति सम्मान और वफ़ादारी का इल्म न सिखाये जाने के कारण हम कहने-करने के बीच सदा फासला रखते आये। कहना कुछ और और करना कुछ यह दोहरी और दोगली नीति आज देश के किस हिस्से में गुँथी हुई नहीं है? पर उपदेश कुशल बहुतेरे की बातें तो सदियों पहले उन किताबों में कह दी गयीं, जिनकी चौपाइयों को हम हर धर्मकाण्ड में बोलते-दोहराते हैं। रही-सही कसर उन लोगों ने पूरी कर डाली, जो समाज और साम्राज्य का नेतृत्व करते हैं। किसी से पूछो राजनेता के लक्षण क्या? तो सीधा-सा जवाब होगा- 'चाटन-भाषण-उद्घाटन', मन में आये सो बोलो, करना-धरना तो कुछ है नहीं। मनसूबे करने और अधरों के आश्वासन देने में कौन-से पैसे लगते हैं। 'वचने का दरिद्रता?' बोलने में कंजूसी कैसी? सबके भाषण, भाषण भर रह गये हैं। बिल्ली सौ-सौ चूहे खाय हज करने को चली। किसी ने कहा—

मक्का गया हज किया, बन के आया हाजी।
आजमगढ़ में जब से लौटा, फिर पाजी का पाजी।।

चाटन, भाषण, उद्घाटन। चाटन की आदत तो आम आदमी में भी पैठ गयी है। जब तक स्वामी-वात्सल्य/जीमनवारी की तुम खबर न फैलाओ, तुम्हारे बड़े-से-बड़े कार्यक्रम 'फ्लॉप' जाएँगे। कई बार तो सुपर फ्लॉप। संतों के प्रवचन के बाद सिक्के और लड्डू बाँटने ने तो ऐसे हालात कर डाले हैं कि जैसे ब्याह की घोड़ी के आगे जब तक न नाचो, वह आगे चलनी तो दूर, खिसकती भी नहीं है। कोई नाचे तो वह दो क़दम चले, नहीं तो चौराहे पर अपनी बेइज्जती करवा बैठो। नचा दो, तो पौ बारह।

धर्माचरण का एक प्रचलित रूप है व्रत-उपवास। बड़ा अच्छा शब्द है यह! धर्म का अदभुत अवदान। पर तुमने किसी को व्रत करते देखा है? एकादशी को द्वादशी की दादी बना देगें। और ये उपवास। आहार की आसक्ति मिटाने के लिए उपवास है, पर चाटन ने उपवास का हुलिया ही बदल डाला है। उपवास तो बाद में होगा, उससे पहले धारणा, उत्तर पारणा; यानी डट कर खायेंगे, बिदाम-पिस्ता पीस-पीस कर; क्योंकि कल तो उपवास है। फिर उपवास हो गया, तो पारणा! दूध और उसमें कटे बिदाम, ऊपर से घी; क्योंकि कल उपवास था।

चाटन, भाषण के बाद उद्घाटन! पहले तो ये लत नेताओं में ही थी, अब तो जिसे देखो वही उद्घाटन के लिए मोहताज है। उद्घाटन करके नाम कमाने की प्रतिष्ठा ने मानव-समाज की ऐसी दुर्दशा कर डाली है कि कल ही एक समाचार पढ़ा है अमुक नगर के 'सी' वार्ड में बने सार्वजनिक शौचालय का कल उद्घाटन है, उद्घाटन पर अमुक सांसद आ रहे हैं। भवनों का उद्घाटन तो फीता काट कर किया जाता है, पर शौचालयों का....। देश की राजधानी में तो आपको यह मुखड़े-मुखड़े पर सुनने को मिल जाएगा – तुम उस हस्ती को बुलाना चाहते हो। वह तो पान की दुकान का भी उद्घाटन करना हो, तो भी पहुँच जाएगा।

आखिर इन सब तौर-तरीक़ों से नैतिकता के कौन-से मूल्य स्थापित या पुनःस्थापित होने का प्रयास हो रहा है। हमारी वाणी और हमारे व्यवहार में आयी दूरी को मापने के कौन-से फीते हैं? विदेशों में तुम्हारी इज़्ज़त इतनी-सी है कि किसी दुकान पर जाओ, तो दुकानदार चौकन्ना हो उठेगा। वह नौकर को इशारा करेगा 'ध्यान से, इंडियन है'। और देश में, कोई विदेशी आ गया तो पर्यटक-मेहमान का भाव किसमें है, जिसे देखो वह गोरी चमड़ी और पैसे पर टूट रहा है। हमें पैसा चाहिये, फिर वह चाहे जिस तरीक़े से आये।

माना, विदेशी ऐशो-आराम, मौज़-मस्ती में पैसा खर्च करता है, मगर वह खर्च करता है। हम न उपयोग करते हैं, न दुरुपयोग। हम सिर्फ जमा करते हैं। यह संग्रह और परिग्रह है। उपयोग करना परिग्रह नहीं है, इकट्ठा करना परिग्रह है। अगर प्राचीन ग्रन्थ कहते हैं कि परिग्रह पाप है, तो....। विश्व के ग्लोब पर खड़े हो कर अपरिग्रह की तूती बजाने वाले, परिग्रह के लबादे से दबे-लुढ़कते जा रहे हैं। बटोरता/टुकुरता आदमी मर जाता है, उस बटोरे हुए की रक्षा के लिए वे ही लोग चूहे, नेवले, साँप के रूप में पुनर्जन्म ले कर ज़मीन में गड़ाये धन पर अपनी पूँछ के बल बैठे रहते हैं–

धन धरती में गाड़े बौरे,
धूरि आप मुख लावै।
मूषक साँप होवेगा आखिर,
तातौ अलच्छि कहावै। –आनंदघन

हम सिद्धान्त और व्यवहार के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करें। हमारा जीवन एक अलग ढर्रे पर रहा हो और हम कोरे सिद्धान्तों की दुहाई देते फिरें, यह कौन-सा औचित्य है। शास्त्र कहेंगे रात को मत खाओं, जबकि शास्त्रों के नव्वे फी-सदी अनुयायी रात को ही खा रहे हैं। नारी-उद्धार की बातें कहेंगे, पर अपने घर की बहू को घूँघट की चार-दीवारी से बाहर आने पर सख्त पाबंदी लगायेंगे। समारोहों में बड़े-बड़े नेताओं और विद्वानों द्वारा छुआछूत और ऊँच-नीच के भेद-भाव को मिटाने हेतु भाषण दिलवायेंगे, पर हक़ीक़त में ओसवाल-अग्रवाल, दस्सा-बीसा, सवर्ण-हरिजन की खाइयों को गहराने का प्रयास करेंगे । भगवान् महावीर और भगवान् बुद्ध के प्रयासों से यज्ञ में होने वाली हिंसा पर तो रोकथाम हुई, पर परिग्रह-बुद्धि के चलते शोषण की हिंसा तो जारी ही है। अपरिग्रह के सिद्धान्त से प्रेरणा ले कर लोगों ने धन और सुखों का

कौन-सा संविभाग किया? अपरिग्रह के नाम पर अपरिग्रह का मात्र कर्म-काण्ड ही तो चल रहा है। लोग अहिंसा और अपरिग्रह के नाम पर नंगे पाँव घूम रहे हैं, मुँह पर कपड़ा बाँध रहे हैं, पर पैसों का परिग्रह, एक-दूसरे को अपने से पीछे धकेलने के प्रयास और विचारों में निरन्तर आयी गिरावट हमारे अपरिग्रह और अहिंसा के सिद्धान्तों के आचरण पर प्रश्न-चिह्न लगा रहे हैं।

ऐसा लगता है कि जैसे सेवा और प्रेम को, दया और करुणा को, ध्यान और योग को, शाकाहार और पर्यावरण को हम विदेशों को निर्यात कर रहे हैं, जो कभी हमारे ही देश के मूलभूत उत्पादन रहे हैं। आखिर विदेशों से हमने आयात क्या किया? अण्डे और मछलियाँ, शराब और शृंगार, हिंसा और आतंक.....। बेहतर होगा हम अपने जीवन में आयी स्खलनाओं की शल्य-चिकित्सा करें। भीतर का मवाद ही बरक़रार रहा, चीरा लगाने से परहेज रखते गये तो जीवन स्वर्ग की विभूति बनने की बजाय नरक की तरह दुःख-दायी और भार-रूप हो रहेगा।

तीसरी बात, हम महज बाहर ही जीते हैं। हमारा स्नान, उपार्जन, चिकित्सा सब बाह्य जीवन से जुड़े हैं। हमने जीवन के दो रूप कर डाले – बाहरी और भीतरी। एक घरवाली पैंसिल और एक स्कूल वाली। पैंसिल गुम होने पर माँ ने पूछा क्या ढूँढ़ रहे हो, बेटे ने कहा, घरवाली...।

हमने मनोचिकित्सा पर ध्यान दिया, जिससे जीवन की मूल समस्याएँ हल हों। मन में हो कचरा, तो रामायण का किया गया पारायण मात्र गोबर की भीतर पर वेलवेट चढ़ाने के बराबर कहलायेगा। हृदय की स्वच्छता पर ध्यान नहीं है। शिक्षा-दीक्षा का पहला पाठ भीतर की पवित्रता का होना चाहिये।

मनुष्य की जीवन-शिक्षा की शुरूआत स्वयं मनुष्य से हो, मनुष्य के जीवन से हो, जीवन को सृजनात्मक, रचनात्मक बनाने पर केन्द्रित हो। मैं परमात्मा को जीता हूँ। परमात्मा मुझमें जीता है। धरती पर जीता मनुष्य परमात्मा का क़दम-दर-क़दम खड़ा मंदिर है। प्राणि-जीवन परमात्मा का निवास-स्थान है। मैंने इंसान ही क्यों, फूलों और पहाड़ों में भी उसके ऐश्वर्य का आकाश-भर-आनन्द उठाया है। मुझे सबसे प्रेम है। सर्वत्र परमात्मा-दर्शन है। बालक में भी। मेरा अहोभाव जीवन के प्रति है। जीवन है तो सब है, जीवन नहीं तो कोई अर्थ नहीं। फिर तो अर्थी है, जनाज़ा है।

मेरा निवेदन रहता है हर व्यक्ति को ईश्वर में आस्था रखनी चाहिये। ईश्वर आकाश में नहीं, जीवन में है, हर प्राणी में है। मनुष्य के लिए हर प्राणी का मूल्य है, पर मनुष्य धरती का सर्वोपरि मूल्य है। मनुष्य के मन्दिर खण्डहर नहीं होने चाहिये। नर रहेगा, तो नारायण रहेगा। इंसान मिटता गया, गिरता गया, तो विधाता ने तो नींद की गोली खा रखी है, मनुष्य की नृशंसता के कारण धरती को चौपट होने से कोई रोक नहीं सकता।

धरती पर तनाव और संत्रास न हो, इसके लिए पहला सूत्र है जीवन-का-सम्मान, जीवन के प्रति अहोभाव!! जीवन को स्वर्ग बनायें। यों 'स्वर्गवासी' होना तो मृत्यु के कारण मनुष्य की मजबूरी है। स्वर्ग हो यहाँ – जीवन की प्रमुदितता और पुलकितता में। मनुष्य-का-जगत् केवल परिवार-मोहल्ले तक सीमित नहीं है। जीवन-का-जगत् और जगत्-का-जीवन विराट है। संकुचितताएँ त्यागें, विराट के आलिंगन के लिए बाहें फैलायें, मानवता को गले लगायें। □

इस दुनिया में कोई चीज टिकने वाली नहीं है। तू इसमें गफ़लत से अपनी उम्र न गुज़ार।
–शेख सादी

भक्तामर स्तोत्र के १२१ अनुवादों का अप्रतिम संकलन

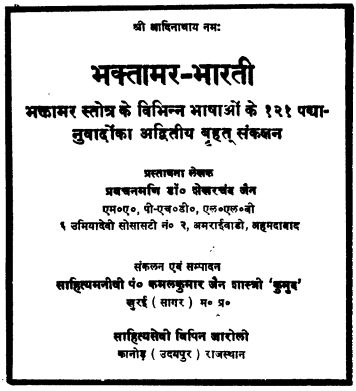
श्री आदिनाथाय नमः

भक्तामर-भारती

भक्तामर स्तोत्र के विभिन्न भाषाओं के १२१ पद्यानुवादोंका अद्वितीय बृहत् संकलन

प्रस्तावना लेखक
प्रवचनमणि डॉ० शेखरचंद जैन
एम०ए०, पी-एच०डी०, एल०एल०बी
९ उमियादेवी सोसायटी नं० २, अमराईवाडी, अहमदाबाद

संकलन एवं सम्पादन
साहित्यमनीषी पं० कमलकुमार जैन शास्त्री 'कुमुद'
खुरई (सागर) म० प्र०

साहित्यसेवी विपिन झारोली
कानोड़ (उदयपुर) राजस्थान

— भक्तामर भारती
(भक्तामर के १२१ पद्यानुवादों का संकलन)
— संक. संपादक : पं. कमलकुमार जैन शास्त्री
— श्री खेमचन्द जैन चेरिटेवल ट्रस्ट,
१७८, केशवगंज, सागर-४७० ००२
— पृष्ठ ६०+१००३
— मूल्य एक सौ ग्यारह रुपये — १९९४

णमोकार महामन्त्र और भक्तामर स्तोत्र जैनों की सार्वभौम/सर्वसम्मत पहचान रहे हैं। णमोकार एक लोककृति है, उसका कोई कृतिकार नहीं है; किन्तु भक्तामर (आदिनाथ स्तोत्र) के प्रणेता आचार्य मानतुंग (दसवीं/ग्यारहवीं शताब्दी) हैं।

समीक्ष्य अनुवाद-संकलन शास्त्रीजी की जीवन-भर की कमाई है। उन्होंने बड़े परिश्रम और अभूतपूर्व निष्ठा से १२१ पद्यानुवादों का संकलन किया है। अनुवादों में प्राकृत का एक, हिन्दी के अठासी, गुजराती के सात, मराठी के आठ; बंगला, उड़िया, अवधी, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी तथा मेवाड़ी के एक-एक, तथा राजस्थानी के दो अनुवाद हैं। इस तरह कुल सोलह भाषाओं में एक सौ इक्कीस अनुवादों का एकत्रण और सूझबूझ के साथ उनका संपादन एक दुःसाध्य कार्य था, जिसे विद्वान् संपादक ने अत्यधिक सफलता के साथ संपन्न किया है। हम सहज ही **भक्तामर भारती** को स्तोत्र-अनुवाद-संकलन के क्षेत्र में मील-का-पत्थर निरूपित करेंगे। **भभा** मात्र अनुवाद-संकलन ही नहीं है, अपितु डॉ. शेखरचंद की अधीत/विस्तृत भूमिका के कारण उससे आगे भी कुछ है। भूमिका ने स्तोत्र के लगभग सभी पक्षों को सरलतम भाषा में स्पष्ट किया है। इस दृष्टि से वह अत्यन्त समर्थ और प्रभावी है।

जहाँ तक भक्तामर स्तोत्र का प्रश्न है, वह स्तोत्र-शिरोमणि है। इसमें आदितीर्थंकर भगवान् आदिनाथ का गुणानुवाद है। यह मात्र एक भक्ति-काव्य नहीं है, वरन् अपनी अतल गहराइयों में जैनाध्यात्म का प्रतीक-दर्पण भी है।

भभा से पहले पण्डितजी की एक और बहुमूल्य कृति वर्ष १९७७ में 'सचित्र भक्तामर रहस्य' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी। यह काफी लोकप्रिय हुई। इसमें भक्तामर का काव्य-कला की दृष्टि से तो मूल्यांकन हुआ ही है, उस पर मन्त्र-दृष्टि से भी खुल कर विचार किया गया है।

हमारा विश्वास है कि समीक्ष्य अनुवाद-संकलन अत्यन्त लोकप्रिय होगा और जैनों का ऐसा कोई घर नहीं बचेगा जहाँ यह न पहुँचे।

प्रकाशक ट्रस्ट ने इसे कम मूल्य उपलब्ध कर संपूर्ण जैन समाज को उपकृत किया है।

△ △

आधुनिक खोजबीन पर खड़ी एक अपूर्व कृति

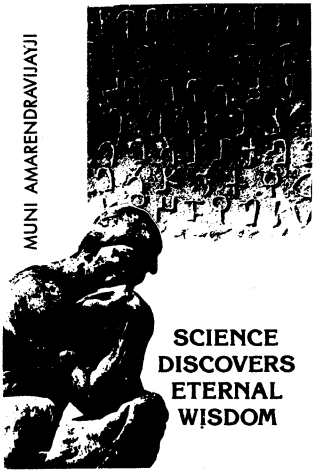

—साइंस डिस्कवर्स एटर्नल विज़डम (अंग्रेजी)
—मुनिश्री अमरेन्द्रविजय
—संपादक : मुनिश्री भुनवचन्द्रजी
—जैन साहित्य एकेडमी,
गाँधीधाम-३७० २०१
—पृष्ठ ११२
— मूल्य चालीस रुपये
— गुज. संस्करण १९७१; अंग्रेजी संस्करण
— १९९३

आलोच्य कृति स्व. मुनिश्री अमरेन्द्र विजय (१९२५-१९९२) की एक ऐसी अमर कृति है, जिसमें उन्होंने परामनोवैज्ञानिक अनुसंधान के संदर्भ में जैनाध्यात्म की मान्यताओं को विज्ञान की कसौटियों पर कसा है। पुस्तक में कुल आठ अध्याय हैं, जिनमें आत्म-सिद्धान्त और ईएसपी (एक्स्ट्रासेन्सरी पर्सेप्शन) का तुलनात्मक/ खोजपूर्ण अध्ययन; 'क्या जीवन रासायनिक संश्लेषण की अन्तिम परिणति है?' जैसे गंभीर प्रश्न पर विचार-विमर्श; पुनर्जन्म जैसे जटिल मुद्दे की विज्ञान के स्तर पर स्वीकृति; परामनोविज्ञान एवं आधुनिक सृष्टि-रचना-विज्ञान के संदर्भ में पारलौकिकता में प्रवेश; अन्य कई पेचीदा जीवन्त प्रश्न; मनुष्य की इन्द्रियगत सीमाएँ; आध्यात्मिकता की अन्तर्वर्ती प्रकृति पर विजय; ऋषि-महर्षियों की दृष्टि में लोक-का-स्वरूप इत्यादि विवादास्पद प्रश्नों पर गहराई से विचार किया गया है।

कुल मिला कर विद्वान् लेखक ने धार्मिकता से ऊपर उठ कर अत्यन्त वैज्ञानिक दृष्टि से उन मुद्दों कर अनासक्त चिन्तन किया है, जो अतिसंवेदनशील हैं, बहस के घेरे में हैं, और जिन्हें लगभग असमाहित माना जाता रहा है। संक्षेप में, हम इसे एक ऐसी विचारोत्तेजक कृति कहेंगे जो आगे चल कर कई जटिलताओं के रहस्य उद्घाटित करेगी और अध्यात्म, मनोविज्ञान तथा धर्म के परस्पर रिश्तों को निर्धारित करने में हमारी मदद करेगी।

— नेमीचन्द

यदि हम संपूर्ण विश्व की खोज करें, ऐसे देश का पता लगाने के लिए जिसे प्रकृति ने सर्वसंपन्न, शक्तिशाली और सुन्दर बनाया है, तो मैं भारत वर्ष की ओर इशारा करूँगा।

—मैक्समूलर

धर्म-रहित जीवन सिद्धान्त-रहित जीवन है और सिद्धान्त-रहित जीवन पतवार-रहित नौका के समान है।

—महात्मा गांधी

देश का सर्वप्रथम शाकाहार विज्ञान प्रशिक्षण शिबिर संपन्न

गुना (निप्र)। मुनिश्री क्षमासागर, ऐलक श्री उदारसागर एवं श्री सम्यक्त्वसागरजी के सान्निध्य में देश का सर्वप्रथम 'शाकाहार विज्ञान प्रशिक्षण शिबिर' सफलतापूर्वक संपन्न हुआ। शिबिर में आगरा, ग्वालियर, छतरपुर, शिवपुरी, सागर, विदिशा, चँदेरी, खुरई, आरोन, पथरिया, शाहपुर, मण्डी बमौरा, हरपालपुर, नौगांव, कुम्भराज तथा बीनागंज से १६८ शिबिरार्थी शरीक हुए, जिनमें ३१ महिलाएँ थीं। ३७ जैनेतर प्रशिक्षणार्थी भी सम्मिलित हुए।

शिबिरार्थियों को 'शाकाहार-क्रान्ति' के संपादक डॉ. नेमीचन्द द्वारा तैयार 'शाकाहार-विज्ञान' (पाठ्यपुस्तक) के अन्तर्गत आठ सत्रों में शाकाहार विज्ञान-संबन्धी बहुमुखीन तुलनात्मक प्रशिक्षण दिया गया। डॉ. जैन के अलावा अन्य आमन्त्रित प्रशिक्षक थे – सर्वश्री निर्मल जैन (सतना), श्री श्रीपाल 'दिवा' (भोपाल), डॉ. विजय जैन (गुना), डॉ. महावीर (गुना) एवं पूर्णचन्द्र जैन (एडवोकेट, गुना)।

इस अवसर पर तीर्थंकर शाकाहार प्रकोष्ठ (इन्दौर) द्वारा तैयार प्रदर्शनी-१ (हिंसा: क़त्ल: क्रूरता) भी आयोजित की गयी, जिसका उद्घाटन नगर के वरिष्ठ सामाजिक कार्यकर्ता श्री सूरजमल पाटनी ने किया।

९ अक्टूबर को समापन सत्र की अध्यक्षता पुलिस अधीक्षक श्री राजीव टंडन ने की। मुख्य आतिथ्य जिलाध्यक्ष श्री दास ने ग्रहण किया। उन्होंने अपने संबोधन में शाकाहार को एक संपूर्ण जीवन-दर्शन बताते हुए कहा कि पाँच इन्द्रियों पर उत्तरोत्तर नियन्त्रण का नाम शाकाहार है। श्री टंडन ने सहअस्तित्व को जीवन का अनिवार्य तत्त्व बताया। ऐलक श्री उदारसागरजी ने कहा कि मनुष्यता गुम हुई है, उसे लौटाना इस युग की अनिवार्यता है। मुनिश्री क्षमासागरजी ने शाकाहार को एक नया आयाम देते हुए कहा कि 'हम जब भी, जहाँ भी दूसरों को पीड़ा पहुँचाते हैं, शाकाहारी नहीं होते। हमें दूसरों के कोनों का कचरा नहीं देखना है, अपितु अपने कोने का कचरा बुहार फेंकना है।

इससे पूर्व नन्हें-मुन्ने बच्चों ने फल-सब्जियों से सज्जित हो कर एक अभूतपूर्व दृश्य उपस्थित किया तथा डॉ. नेमीचन्द ने प्रशिक्षणार्थियों को स्मृति-स्वरूप पुस्तकों के सेट तथा स्मृति-चिह्न भेंट किये। शिबिर का सूत्र-संचालन डॉ. महावीर (शाकाहार-प्रकोष्ठ, अध्यक्ष); विजय जैन (संयोजक), तथा डॉ. विजय जैन/रमेशचन्द पाटनी (प्रबन्ध संचालक) ने संयुक्तरूप से किया।

उल्लेखनीय है कि जिस पाठ्यक्रम के अनुसार प्रशिक्षण दिया गया उसका प्रकाशन *श्री पांड्या सुकृत ट्रस्ट, गुना नवम्बर १९९४* के अन्त तक कर रहा है। □

–कलकत्ता। 'भारत निर्माण' के संयोजक श्री एम.सी. भण्डारी के अनुसार इस वर्ष की अन्तिम तिमाही में दिल्ली में प्राचीन भारतीय विज्ञानों (विधाओं) का एक मेला आयोजित होगा, जिसमें ज्योतिष, योग, ध्यान, समग्र अध्यात्म-चिकित्सा, आयुर्वेद तथा अन्य समस्त वैकल्पिक चिकित्सा- पद्धतियों (होम्योपैथी, एयूपंक्चर, एक्यूप्रेशर, चुम्बक-चिकित्सा, सम्मोहन-चिकित्सा, सूर्य-किरण चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा आदि) पर निःशुल्क लोक-शिबिर आयोजित किये जाएँगे। प्रत्येक शिविर में मार्गदर्शन के लिए देश के मूर्द्धन्य विशेषज्ञ उपलब्ध रहेंगे।

शाकाहार का अर्थ व्यापक और गहरा है

–सरदार दर्शनसिंह

दमोह (निप्र)। १ अक्टूबर को शाकाहार उपासना परिसंघ ने तब शाकाहार के प्रचार-इतिहास में एक स्वर्णिम अध्याय जोड़ा जब उसने सम्प्रदाय-मुक्त एवं राजनीति-निरपेक्ष शैली में शाकाहार-संबन्धी बहुविध आयोजन सफलतापूर्वक संपन्न किये। इनमें मुख्य थे – विशाल वाहन-रैली, संगोष्ठी, प्रदर्शनी (हिंसा: क़त्ल: क्रूरता), आमसभा।

आमसभा में डॉ. छुट्टनलाल, नेमा, सरदार दर्शनसिंह, डॉ. नेमीचन्द एवं डॉ. डी.सी. जैन ने जनता का आह्वान किया कि वह हिंसा के बढ़ते क़दम रोके और देश में शान्ति, प्रीति, विश्वास और भाईचारे का वातावरण बनाये। श्री नेमा ने शाकाहारी और मांसाहारी की शरीर-संरचना की मिसाल देते हुए शाकाहार को प्राणिमात्र के लिए निरापद, और हितकारी बताया। सरदार दर्शनसिंह ने कहा कि शाकाहार एक व्यापक शब्द है, जिसका गहरा अर्थ है। यदि हम 'पूरे' बन जाएँ, तो अज्ञानता को हटाया जा सकता है। हम अपने-अपने धर्मों को समझें। यदि हम 'पूरे' जैन, 'पूरे' सिख, 'पूरे' ईसाई, 'पूरे' पारसी बनते हैं, तो फिर हिंसा, कलह और क्रूरता के बने रहने का कोई कारण ही नहीं रहेगा। डॉ. नेमीचन्द जैन ने कहा कि हमें क़त्लखानों का कुचक्र खत्म करना है और जीवन की गुणवत्ता को फिर से स्थापित करना है। डॉ. डी.सी. जैन ने शाकाहार को जन-जन तक पहुँचाने का शुभ संकल्प व्यक्त किया। सभा का संचालन श्री सुनील जैन ने किया। प्रदर्शनी को हज़ारों लोगों ने देखा-सराहा।

'हिंसा को हराइये' – आमसभा में बोलते हुए सरदार दर्शनसिंह; पास खड़े हैं डॉ. डी.सी. जैन।

अल-कबीर अस्थायी तौर पर बंद

जन-आन्दोलन की पहली सफलता

हैदराबाद (निप्र)। वर्ष १९८९ के शहीद दिवस (३० जनवरी/गाँधी पुण्यतिथि) पर अल-कबीर एक्स्पोर्ट्स लिमि. ने रुद्रारम् (मेदक, आन्ध्रप्रदेश) में जिस 'इंटीग्रेटेड फूड प्रोसेसिंग प्रोजेक्ट' (क़त्लखाने) को खोलने के लिए दरख्वास्त की थी और जिसे आन्ध्रप्रदेश सरकार ने ५ मई १९८९ को अनापत्ति प्रमाण-पत्र दिया था, उसे सितम्बर १९९४ के अन्तिम सप्ताह में ज़बर्दस्त जन-आक्रोश का मुक़ाबला करना पड़ा। २६ सितंबर को पुलिस जवानों की कड़ी किलेबंदी के बावजूद 'पशुरक्षा महायज्ञ' संपन्न हुआ, पुलिस ने लाठीचार्ज किया, १० से १५ हज़ार तक लोग गिरफ्तार हुए, एक लाख लोग सड़कें सील किये जाने के कारण अल-कबीर परिसर तक नहीं पहुँच सके तथा अन्ततः २७ सितम्बर को प्रधान मन्त्री ने अस्थायी रूप से क़त्लखाने को बंद किये जाने का ऐलान किया। समाचार-समीक्षकों ने इस घोषणा को प्रधान मन्त्री की 'विलम्ब अर्थात् समाधान' की नीति का छलपूर्ण हिस्सा निरूपित किया है। देखा जा रहा है कि यह अस्थायी बंद किस तरह स्थायी बंद की शक्ल ग्रहण करता है।

सुबह जरूर होगी, माहौल बनाये रखें

अहिंसा/शाकाहार सम्मेलन संपन्न

कटनी (निप्र)। मुनि श्री समतासागरजी, श्री प्रमाणसागरजी तथा श्री निश्चयसागरजी की प्रेरणा से २,३ एवं ४ अक्टूबर को जैन समाज ने अहिंसा एवं शाकाहार सम्मेलन का सफल आयोजन किया, जिसके अन्तर्गत विशाल शाकाहार-सम्मेलन, प्रदर्शनी, शाकाहार संगोष्ठी, पत्रकार-वार्ता, प्रश्न-गोष्ठी, मानव-धर्म-सम्मेलन, शाकाहार-संगीत निशा, युवा-शक्ति संगोष्ठी, आध्यात्मिक गोष्ठी तथा कवि-सम्मेलन रखे गये।

शाकाहार-सम्मेलन में सर्वश्री यशपाल जैन (संपादक 'जीवन साहित्य', दिल्ली); डॉ. नेमीचन्द (संपादक 'शाकाहार-क्रान्ति') (इन्दौर); श्रीपाल 'दिवा' (भोपाल); निर्मल जैन (सतना), नेमीचन्द चौधरी (अकलतरा); नीरज जैन (सतना), सच्चिदानन्द अवस्थी (सेवा-निवृत्त न्यायाधीश, हाईकोर्ट, मप्र); डॉ. प्रेमसुमन जैन (उदयपुर); मुहम्मद शफी खान (सागर); डॉ. शर्मा (जबलपुर) आदि ने अपने विचार व्यक्त किये।

जैन धर्मशाला में आयोजित प्रदर्शनी (शाकाहार/सदाचार परिषद् जलगाँव एवं तीर्थंकर शाकाहार प्रकोष्ठ इन्दौर द्वारा प्रवर्तित) को हजारों लोगों ने देखा। न्यायमूर्ति श्री अवस्थी ने अपनी टिप्पणी में लिखा है कि 'यह बहुत ही विलक्षण प्रदर्शनी है। फोटोग्राफर ने कमाल कर दिखाया है। इसे देखने से यह स्पष्ट है कि क़त्लखानों में अमानुषिक ढंग से जीवों संहार हो रहा है। इसे रोका जाना आवश्यक है।' गाँधी जयन्ती के दिन आयोजित सम्मेलन में श्री अवस्थी ने कहा कि 'अहिंसा शब्द छोटा नहीं है, इस पर मनन करना चाहिये। हमें इस तरह जीना

न्यायमूर्ति श्री सच्चिदानन्द अवस्थी: 'हिंसा को रोकें'।

चाहिये कि हमारा जीना दूसरों को न चुभे। हमें पशु-क्रूरता निवारण अधिनियम १९६० के विस्तार के लिए पुरजोर कोशिश करनी चाहिये। अहिंसा के सही ज्ञान के लिए हमें जगह-जगह नागरिकता विद्यालय चलाने चाहिये।'

३ अक्टूबर को मानव-धर्म सम्मेलन को संबोधित करते हुए मुनिश्री समतासागरजी ने कहा कि 'सुबह जरूर होगी, माहौल बनाये रखिये'।

समस्त आयोजन का सफल सूत्र-संचालन श्री सुधीर जैन किया।

—शुजालपुर। वयोवृद्ध स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी एवं समर्पित समाजसेवी श्री सौभाग्यमल जैन (८४) का ३१ अक्टूबर को देहावसान हो गया। वे मध्यभारत के पूर्व वित्त/राजस्व मंत्री भी थे। १९५४ में उन्होंने जापान, रंगून, हांगकांग आदि अनेक देशों की यात्रा की थी। १९५७ में वे अ.भा. जैन कान्फ्रेन्स के उपाध्यक्ष भी रहे।

—बम्बई। विख्यात शिक्षा-शास्त्री, प्राकृत-मनीषी एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि के प्राच्यविद्याविद् प्रो. जगदीशचन्द्र जैन (८५) का गत २८ जुलाई को देहावसान हो गया। १७ जून १९९३ को हैदराबाद में आयोजित 'द्वितीय राष्ट्रीय प्राकृत सम्मेलन' में उन्हें अभिनन्दित किया गया था। इस अवसर पर अध्यक्ष-पद से उन्होंने कहा था कि 'हमें प्राकृत को सरकार का सहारा लिये बिना अपने पुरुषार्थ से जन-जन तक पहुँचाना है'।

—इन्दौर। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार (१९९४; २५ हजार रु.) प्रो. लक्ष्मीचन्द्र जैन (जबलपुर) को उनकी बहुमूल्य कृति 'द ताओ ऑफ जैन साइंसेज' पर प्रदान किया गया है। वर्ष १९९५ का पुरस्कार जैनधर्म के इतिहास एवं पुरातत्त्व पर दिया जाएगा। प्रस्ताव भेजने की अन्तिम तिथि ३१ मार्च १९९५ रखी गयी है।

—नई दिल्ली। आचार्य श्रीविद्यानन्द मुनि के सान्निध्य में संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं के विद्वान्, शिक्षाविद् डॉ. मण्डन मिश्र को प्रमुख उद्योगपति स्व. सेठ लालचंद हीराचंद दोशी (बम्बई) की पुण्य-स्मृति में स्थापित एक लाख रु. के प्रथम 'आचार्य कुन्दकुन्द पुरस्कार' से विभूषित किया गया। पुरस्कार-प्रदान-विधि केन्द्रीय वित्त-मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने संपन्न की।

—खजुराहो। मध्यप्रदेश के पूर्व मन्त्री एवं समर्पित समाजसेवी श्री दशरथ जैन को जैन क्लब परिसंघ (सतना) के तेरहवें अधिवेशन (२४ अक्टूबर) के अवसर पर 'जगदीश राय स्मृति प्रतिभा अवार्ड' (ताम्रपत्र; रु. १००१/-) से सम्मानित किया गया। उक्त अवार्ड सतना के श्री विजय कुमार राय ने अपने पिताश्री की स्मृति में स्थापित किया है।

—बीकानेर। श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के 'प्रदीप कुमार रामपुरिया स्मृति साहित्य पुरस्कार' (रु. २१,०००/-) एवं 'चम्पालाल सांड स्मृति साहित्य पुरस्कार' (रु. ११,०००/-) क्रमशः डॉ. धर्मचन्द जैन (कुरुक्षेत्र; जैनदर्शन में नय की अवधारणा) एवं डॉ. सुरेश सिसौदिया (उदयपुर; जैनधर्म के संप्रदाय) को प्रदान किये गये हैं।

—नई दिल्ली। श्री कुन्दकुन्द भारती (१८-बी स्पेशल इंस्टीट्यूशनल एरिया, नदि-६७) के तत्त्वावधान एवं आचार्य श्री विद्यानन्दजी के सान्निध्य में २८ से ३० अक्टूबर तक 'प्रथम राष्ट्रीय शौरसेनी प्राकृत संगोष्ठी. सफलतापूर्व संपन्न हुई। संगोष्ठी में पाँच संकल्प पारित हुए—१. राष्ट्रीय प्राकृत अकादमी बने; २. संविधान-स्वीकृत भाषा-सूची में प्राकृत भी हो; ३. प्रतिवर्ष ज्येष्ठ शुक्ला ५ को 'राष्ट्रीय प्राकृत दिवस' मनाया जाए; ४. बृहत् शौरसेनी प्राकृत कोश तैयार किया जाए; ५. शौरसेनी व्याकरण-व्युत्पत्ति-विमर्श विषयक ग्रन्थ तैयार किये जाएँ।

—इन्दौर। मध्यप्रदेश संस्कृत अकादमी (भोपाल) एवं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ (इन्दौर) के संयुक्त तत्त्वावधान में अ.भा. प्राकृत संगोष्ठी-९४ (२२-२४ अक्टूबर) का आयोजन किया गया, जिसमें देश के प्रायः सभी भागों से प्राकृत-संस्कृत के विद्वान् सम्मिलित हुए। संगोष्ठी-संयोजन अकादमी-सचिव डॉ. भागचन्द्र 'भागेन्द्' ने किया।△△

(पृष्ठ ३१ का शेष)

लक्षणों का यथासंभव पालन करके मुक्त हुआ जा सकता है, और अनावश्यक मानसिक, तनाव, हीन एवं अपराध-भावना से ही छुटकारा पाया जा सकता है तथा एक उल्लासपूर्ण और आत्म-विभोर जीवन का आनन्द उठाया जा सकता है

इसके अलावा मानसिक तनाव के लिए उपयोग में लायी जाने वाली औषधियाँ भी एलर्जी की कारण हो सकती हैं। □□

*एलर्जी विशेषज्ञ; निदेशक, नेशनल स्किन केअर एंड एलर्जी सेंटर, कंपू (ग्वालियर)।

(पृष्ठ २ का शेष)

उक्त कारणों की सही जाँच 'एलर्जी पेच टैस्ट' द्वारा की जाती है।

शीत पित्त, दमा (श्वास) एवं जुकाम–

उक्त प्रकार की एलर्जी के लक्षण अलग-अलग होते हुए भी इनके कारण अक्सर समान ही होते हैं, जो इस प्रकार हैं–

खाद्य एवं पेय पदार्थ–

–अण्डा, मछली, मांस, चिकन आदि।

–देशी एवं अंग्रेजी शराब।

–डिब्बे एवं बोतलों में उपलब्ध खाद्य सामग्रियों में रंग, खुशबू एवं सुरक्षक (प्रिजर्वेटिव्हज़) के लिए मिलाये गये रसायन (केमिकल्स)।

–कटहल, बैंगन एवं आलू।

जैसा कि आप जानते हैं कि एक जैन श्रावक के लिए उपर्युक्त पदार्थ अभक्ष्य हैं; किन्तु कुछ खाने योग्य शाकाहारी पदार्थ भी एलर्जी के कारण हो सकते हैं, जैसे–

–सौंफ, हींग, मसाले।

–केला, सूखे मेवे, मूँगफली।

–दूध, दालें, चावल आदि।

किन्तु इनकी एलर्जी उत्पन्न करने की क्षमता काफी कम होती है; क्योंकि लगातार एलर्जी परीक्षण एवं खोज द्वारा यह सिद्ध हो गया है कि **जन्तु-प्रोटीन, वनस्पति-प्रोटीन की अपेक्षा ज्यादा एलर्जी उत्पन्न करने की क्षमता रखते हैं।**

साथ ही एलर्जी परीक्षण द्वारा यह भी देखने में आया है कि **मांसाहार से एलर्जी उन व्यक्तियों को ज्यादा होती है, जिनके माता-पिता शाकाहारी होते हैं।**

एलर्जिक दवाएँ; यथा–

–पेनीसिलिन, एन्टीफंगल, सल्फा, ट्रेट्रासाइक्लिन।

–कुछ दर्द-निवारक दवाएँ।

आपको जानकर आश्चर्य होगा कि पेनीसिलिन एवं एन्टीफेन्गल दवाएँ उन्हीं जीवाणुओं से बनायी जाती हैं, जिनके विरुद्ध इन्हें प्रयोग में लाया जाता है।

श्वास-द्वारा प्रवेश करने वाले एलर्जिक तत्त्व–

१. फूलों के पराग-कण। २. फफूँद के कण। ३. पशुओं एवं कीड़े-मकोड़ों के बाल एवं पंख। ४. धूल,एवं उद्योगों की गैसें एवं धुआँ आदि।

उपर्युक्त एलर्जिक तत्त्वों से काफी हद तक बचने का उपाय श्वेताम्बर जैनाचार में है, जहाँ सामान्य श्रावक को नाक पर पट्टी बाँधने का प्रावधान है। इसी सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए प्रसिद्ध एलर्जी विशेषज्ञ डॉ. जे.एस. पसरीचा (ऑल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेस, दिल्ली) ने नासिका-छन्नी (नजला फिल्टर्स) का आविष्कार किया है।

यदि नेजल फिल्टर से भी बचाव पूरा नहीं हो तो मरीज़ को एलर्जी टेस्ट के पश्चात् नियमित इंजेक्शन (डीसेंटीज़ेशन) लगवाने चाहिये।

संक्रामक रोग (इन्फेक्टिव डिसीजेज़)

मुख्यतया गले एवं आँतों का इन्फेक्शन एलर्जी का मुख्य कारण है, जो कि बगैर छने पानी एवं बाज़ारू खाद्य पदार्थों के सेवन से अक्सर बना रहता है; अतः जैनाचार का पालन करते हुए इनसे बचा जा सकता है।

कैंसर

आपको यह जान कर आश्चर्य होगा कि वृद्ध मरीज़ों में एलर्जी का मुख्य कारण कैंसर भी हो सकता है, जिनमें मुख्यतया आँतों एंव श्वासनली का कैंसर है, जो तम्बाकू, पानमसाला एवं धूम्रपान के सेवन से होता है। इन पदार्थों से व्यक्ति को हमेशा बचना चाहिये।

मानसिक तनाव (स्ट्रेस)

यह भी एलर्जी का एक मुख्य कारण है। इसके प्रमुख कारण हैं– व्यभिचार, भ्रष्टाचार, मायाचार, जो कि जैनाचार में निषिद्ध हैं।

इन विकृतियों से जैनधर्म में बताये धर्म के दस

(शेष पृष्ठ ३० पर)

जैनधर्म: १०० तथ्य

२९. जो जन्म-मरण की जंजीर में बँधे संसार में भटक रहे हैं, वे संसारी जीव हैं। संसार संस्कृत भाषा की 'सृ' धातु से बना शब्द है, जिसके पहले 'सम्' उपसर्ग लगा हुआ है तदनुसार संसार का अर्थ है – जगत् बार-बार जन्म, अन्तहीन बहाव। जो बगैर किसी ओर-छोर के निरन्तर सरक रहा है, वह संसार है तथा इस प्रवाह में जो जीव पड़े हैं वे संसारी जीव हैं।

३०. जिन्होंने संसार-के-चक्रव्यूह को छिन्न-भिन्न कर दिया है, वे मुक्त जीव हैं। मुक्ति संस्कृत की 'मुच्' धातु से विकसित शब्द है, जिसके मायने हैं: छोड़ने या खोलने की क्रिया, मोक्ष, स्वाधीनता। जिन जीवों ने अपने स्वभाव पर से तमाम आवरण हटा लिये हैं, और जो अपने मूल स्वरूप में अवस्थित हुए हैं, वे मुक्त जीव हैं।

३१. त्रस संसारी जीवों का एक भेद है। अपनी रक्षा के लिए स्वयं चल-फिर सकने वाले जीव त्रस कहलाते हैं। 'त्रस' संस्कृत की 'त्रस्' धातु से निर्मित शब्द है, जिसका अर्थ है गति, कम्पन आदि। जो गतिक्षम है, वह त्रस जीव है। त्रस जीव स्थूल ही होते हैं, सूक्ष्म नहीं होते। दो इन्द्रिय से ले कर संज्ञी (मन-सहित) पंचेन्द्रिय जीवों तक अर्थात् लट, चिऊँटी आदि से ले कर मनुष्य, देव आदि तक तमाम त्रस जीव हैं।

३२. संसारी जीवों का द्वितीय भेद स्थावर कहलाता है। यथास्थान सुस्थिर रहने के कारण इन्हें स्थावर कहते हैं। स्थावर शब्द 'स्था' धातु से विकसित शब्द है, जिसका अर्थ है स्थिर या अचल रहना। स्थावर जीव पाँच प्रकार के हैं – पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति। ये जीव स्पर्शन इन्द्रिय के माध्यम से जानने, देखने, खाने, पीने आदि की क्रियाएँ संपन्न करते हैं।

३३. काय शरीरवाची शब्द है। यद्यपि जीवों के नाना भेद हैं, तथापि काय की दृष्टि से ये छह हैं। षट्कायिक (छह काय के) जीव हैं – पृथिवी, अप् (जल), तेज (अग्नि), वायु, वनस्पति, एवं त्रस (मांस-निर्मित शरीर)।

३४. इन्द्रियाँ शरीरधारी जीव के अनुभूति-माध्यम हैं। इन्द्र आत्मवाची शब्द भी है। इन्द्रियाँ साधन हैं, साध्य नहीं हैं। ये पाँच हैं – स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत (कर्ण)।

३५. छू, चख, सूँघ, तथा सुन कर जानना क्रमशः स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, तथा श्रोत (कर्ण) इन्द्रियों द्वारा होता है। मन को ईषत् (किंचित्) इन्द्रिय कहा गया है।

–क्रमशः